Chapter-6

षष्ठ अध्याय

डॉ. भगवतीशरण मिश्र की भाषा-शैली के कतिपय अभिलक्षण

प्रास्ताविक

प्रस्तुत अध्याय में हम डॉ. भगवतीशरण मिश्र की भाषा-शैली के कतिपय अभिलक्षण पर विचार करने जा रहे हैं। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में हमें विभिन्न प्रकार की शैलियाँ उपलब्ध होती हैं। जैसे वर्णनात्मक शैली, व्यास शैली, समास शैली, आलंकारिक शैली, तर्कयुक्त गम्भीर शैली, शैली, चिन्तनप्रधान शैली, तरंग शैली, धारा-प्रवाह शैली, परिगणनात्मक शैली, प्रश्नोत्तर शैली, उद्धरण शैली, संस्कृतनिष्ठ शैली, अरबी-फारसीवाली शैली, अंग्रेजी-प्रधान शैली, आंचलिक शैली आदि-आदि। डॉ. मिश्र की औपन्यासिक भाषा में संकेतात्मकता, संक्षिप्तता, बहुश्रुतता, प्रतीकात्मकता, नवीन भाषाभिव्यंजना जैसी कुछ शैलीगत विशेषताएँ भी उपलब्ध होती हैं। कोई लेखक चाहे कितना भी विद्वान और पंडित क्यों न हो उसकी भाषा की कुछ भाषागत मर्यादाएँ और सीमाएँ होती हैं जिनका विवेचन भी यहाँ प्रस्तुत है।

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में प्रयुक्त विभिन्न शैलियाँ

'शैली' शब्द की व्युत्पत्ति 'शील' से मानी गई है। शील का अर्थ होता है - स्वभाव या प्रकृति। बाबू गुलाबराय के अनुसार - ''किसी काम के किसी विशेष प्रकार से करने की पद्धति को शैली कहते हैं।''[1] शैली के लिए अंग्रेजी पर्यायवाची शब्द 'स्टाइल' है तो संस्कृत पर्यायवाची शब्द 'रीति' है। अतः 'शैली', 'स्टाइल' और 'रीति' समानार्थक शब्द हैं, जिसका मूल अर्थ 'अभिव्यक्ति का विशिष्ट ढंग' है।

पं. बलदेव उपाध्याय ने 'शैली किसे कहते हैं' इसको समझाते हुए लिखा है कि - ''लेखक अपनी रूचि तथा स्वभाव के अनुसार अपने हृदय के भावों को एक विचित्र प्रकार से प्रकट किया करता है। कोई लेखक साधारण अर्थ के प्रतिपादन के लिए असाधारण शब्दों का प्रयोग किया करता है तो अन्य लेखक विशिष्ट अर्थों को प्रकट करने के लिए सामान्य शब्दों का व्यवहार करता है। अपने मनोगत भावों की अभिव्यक्ति करने के लिए विभिन्न लेखक नवीन तथा विशिष्ट मार्गों का अवलम्बन किया करते हैं। कई बार तो अर्थ तो एक ही होता है, परन्तु उसके द्योतक शब्द तथा वाक्य का विन्यास भिन्न-भिन्न कवियों तथा लेखकों के हाथ में भिन्न-भिन्न हो जाता है। इसी विशिष्ट लिखने के ढंग को 'शैली' या 'रीति' के नाम से पुकारते हैं। प्रत्येक लेखक की अपनी एक खास शैली होती है जिसमे वह लिखा करता है, चाहे वह थोड़ा लिखे या बहुत लिखे। इसीलिए जितने कवि हैं, उतनी रीतियाँ हैं। जितने लेखक हैं, उतनी शैलियाँ हैं।''[2]

उपर्युक्त कथन से यह स्पष्ट हुआ कि साहित्य में किसी भाव, विचार या कल्पना की अभिव्यक्ति के ढंग या प्रकार को शैली कहते हैं। मनुष्य अपने भाव-विचार-कल्पना को दूसरों के सामने प्रकट करना चाहता हैऔर उसका यह प्रकटीकरण एक विशिष्ट ढंग का होता है। उसका यह विशिष्ट ढंग उसके स्वभाव से सम्बन्धित रहता है। इसके लिए हम एक उदाहरण देना चाहेंगे। दो व्यक्ति एक ही कहानी सुनाते हैं, परन्तु उनके कहने के ढंग में हमें एक अन्तर मिलता है। कहानी वही होती है, परन्तु एक के मुँह से सुनने पर वह अधिक आकर्षक और सुन्दर लगती है और दूसरे के मुँह से सुनने पर वही कहानी नीरस और साधारण-सी लगती है। कहने का यही विशिष्ट ढंग शैली कहलाता है। मनुष्य तथा शैली में घनिष्ट संबंध है। एक फ्रेंच विद्वान के अनुसार शैली स्वयं व्यक्ति है (स्टाइल इज़ दी मेन हमिसेल्फ)। प्रत्येक महान साहित्यकार की अपनी एक विशिष्ट शैली होती है। शैली की इसी विशेषता के कारण हम किसी पद या गद्यांश को पढ़कर तुरन्त यह कह बैठते हैं कि यह तो अमुक व्यक्ति का लिखा हुआ प्रतीत होता है। सूर, तुलसी, बिहारी, प्रसाद, रामचन्द्र शुक्ल आदि की शैलियाँ ऐसी ही विशिष्ट रही हैं। प्राचीन कवियों की रचनाओं के प्रक्षिप्त अंशों को उनकी विशिष्ट शैलियों को देखकर ही छाँटा या अलग किया जाता है। भिन्न-भिन्न विषयों के अनुसार शैली भी परिवर्तित हो जाती है। एक ही लेखक के दो भिन्न-भिन्न प्रकार के उपन्यासों में भी शैलीगत अंतर मिल सकता है, यथा - 'मित्रो मरजानी' और 'सूरजमुखी अंधेरे के'।

डॉ. मिश्र के उपन्यासों की शैली में भी उनके व्यक्तित्व की छाप अनिवार्य रूप से रहती है। हजारों पंक्तियों के बीच में से भी डॉ. मिश्र की पंक्ति को पहचान लेना हर पाठक के लिए सरल है। उन्होंने वस्तु,पात्र, परिवेश, विचार आदि के अनुरूप शैली का प्रयोग किया है। उनके उपन्यासों में भी हमें शैलीगत विविधता के दर्शन होते हैं। डॉ. मिश्र के उपन्यासों की भाषा-शैली पर समग्रतया विचार करने पर हमें निम्नलिखित शैलियों के दर्शन सहजतया हो जाते हैं - वर्णनात्मक शैली, व्यास शैली, समास शैली, आलंकारिक शैली, तर्कयुक्त गंभीर शैली, प्रश्न शैली, चिन्तन प्रधान शैली, तरंग शैली, धारा-प्रवाह शैली, परिगणनात्मक शैली, प्रश्नोत्तर शैली, उद्धरण शैली, व्यंग्य शैली, सरल-सुबोध शैली, संस्कृतनिष्ठ शैली, अरबी-फारसी वाली शैली, अंग्रेजी प्रधान शैली, आँचलिक शैली आदि-आदि।

1. वर्णनात्मक शैली

उपन्यास के विकास में वर्णनात्मक शैली का योगदान उल्लेखनीय है। इसके द्वारा पात्र-चित्रक्षण ही नहीं होता प्रत्युत् कथानक, पृष्ठभूमि, वातावरण, देशकाल चित्रण भी होता है। उपन्यासकार के द्वारा प्रस्तुत विवरण मात्र वर्णनात्मक शैली का परिचायक नहीं है। इसके द्वारा उपन्यासकार पाठक के मस्तिष्क में अभीप्सित प्रभाव अंकित करता है तथा वह वस्तु ही उसके समक्ष सजीव और सप्राण हो जाती है। ऐसा अनुभव होता है कि वर्णन के कारण यह वस्तु ही दृश्यमान होकर बोल रही है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में भी अनेक स्थलों पर प्रसंग के अनुसार वर्णन शैली का प्रयोग हुआ है। 'का के लागूं पांव' उपन्यास में लेखक ने शब्द-चित्रण द्वारा संध्या-समय के वातावरण को प्रस्तुत किया है। यथा-

''पूरबी क्षितिज पर अंधकार की परत पतली पड़ने लगी थी। लालिमा की एक पतली क्षीण रेखा धीरे-धीरे विस्तृत होने लगी थी। ऊँचे वृक्षों के नीड़ों में पक्षियों ने पर फड़फड़ाना प्रारंभ कर दिया था। अन्धकारपूर्ण वातावरण चिड़ियों के कलरव से मुखरित हो चला था। जंगल के जीव अपनी-अपनी माँदों और अन्य आराम-स्थलों में अंगड़ाईयाँ ले अपने अंगों को सीधा करने लगे थे।'' पृ. 163

पवनगढ़ के किले के पास से शिवाजी अपने आदमियों के साथ घोर अंधकार में जंगल-पहाड़ों के रास्ते भागते हैं और उनके पीछे मुसलमान सिपाही उनका पीछा करते हैं उसका बड़ा ही सजीव चित्रण लेखक ने 'पहला सूरज' उपन्यास में किया है। यथा-

''रास्ते के नदी-नाले और घाटी-चट्टान मराठों की गति को सीमित कर रहे थे। इधर रात तेजी से दिन में बदलती जा रही थी। उधर मशाल के साथ पीछा करते मुसलमान सिपाही करीब-से-करीब आते जा रहे थे। यद्यपि मराठों के भाग निकलने के कुछ देर बाद ही मुसलमान सैनिक कूच कर पाए थे, पर दोनों के बीच की दूरी लगातार घटती जा रही थी। मुसलमान सैनिक उन्हें अभी देख नहीं पा रहे थेपर मशाल के साथ होने से मराठे उनकी स्थिति का अन्दाज ठीक-ठीक लगा पा रहे थे और समय जैसे-जैसे बीतता जा रहा था उनका भय बढ़ता जा रहा था।'' पृ. 235

2. व्यास शैली :

व्यास का अर्थ ही होता है फैलाव अथवा विस्तार। जो वर्तुल के केन्द्र से पास होकर परिधि के दोनों बिन्दुओं को स्पर्श करती है जहाँ पर कोई बात या विचार या

अभिमत को अनेक उदाहरण या ब्यौरे देते हुए स्पष्ट करने का प्रयत्न होता है, वहाँ व्यास शैली मानी जाती है। आचार्य रामचन्द्र शुक्ल के भाव और मनोविकार सम्बन्धी निबन्धों में व्यास और समास शैली का सुन्दर प्रयोग हुआ है। डॉ. मिश्र पहले किसी बात या विचार को सूत्र रूप में कहते हैं और पुनः उन व्यक्त विचारों को उदाहरण देने या व्याख्या करने के लिए व्यास शैली का सहारा लेते हैं। यहाँ एक बात ध्यातव्य है कि मालोपमा अलंकार में भी व्यास शैली की ही प्रवृत्ति रहती है। उक्त दोनों प्रकार के उदाहरणों की बहुलता डॉ. मिश्र के उपन्यासों में दृष्टिगोचर होती है। यहाँ पर 'पीतांबरा' का उदाहरण दिया जा रहा है। यथा-

"आकांक्षाएँ आम्रवृक्ष की मंजरियाँ हैं। उनके फूलने-फलने में कुछ समय लगता है पर जब इनके फूल-फल में परिवर्तित हो जाते हैं तो वृक्ष की शोभा देखते ही बनती है। फल थोड़े बड़े हुए तो शाखाएँ झुकने लगती हैं। और माली का मन भी झूम-झूम उठता है। अपना प्रयास सार्थक प्रतीत होता है।" पृ. 159

'पवनपुत्र' उपन्यास में हनुमान के बढ़ने का मालोपमा अलंकार द्वारा विस्तार से वर्णन किया है - "जैसे पूर्णिमा का चाँद बढ़ता है। जैसे चन्द्रोदय को अवलोकित कर सागर की लहरें वर्द्धनशील होती हैं। जैसे पुण्य-व्रती का यश और दानशीलों की सम्पत्ति बढ़ती है। जैसे असंयमी का रोग और संयमी का स्वास्थ्य बढ़ता है। जैसे हविष से अग्नि और काम से क्रोध बढ़ता है। जैसे अन्न से ज्वर और गुरुभक्ति से विद्या वर्द्धित होती है। वैसे ही मैं बढ़ता जा रहा था।" पृ. 21

'सूरज के आने तक' उपन्यास में लालमोहर राधा से प्यार करता है। यह बात जब वह नूनू बाबा को बताता है तब नूनू बाबा उसको डांटते हुए कहते हैं उसमे भी व्यास शैली का विस्तार देखने को मिलता है -"प्यार की ऐसी की तैसी। भला प्यार भी ऐसी ओछी चीज है? तुम्हें हो गया है मोह। तुम हो गए हो विकार के शिकार। तुम्हें हो गया है सम्भ्रम। मति गई है तुम्हारी मारी।देहात के निरे बुद्धू, तुमने कभी शहर का सौंदर्य देखा नहीं, आँखें चौंधिया गईं तुम्हारी। बेबस पतंगे की तरह रूप-शिखा पर जल-मरने को तुम कटिबद्ध हो गए हो।" पृ. 34

3. समास शैली

कई शब्दों का मिलकर एक शब्द बनना समास कहलाता है। और इस विधि से बने शब्दों को सामासिक शब्द कहते हैं। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में ऐसे शब्दों की बहुलता पाई जाती है, जैसे - प्रत्युत्पन्न मतित्व, अनास्थावादी, नर-केसरी, मनस्वी

आदि-आदि। समास शैली, व्यास शैली की विलोमी है। समास शैली में संकोचन की प्रवृत्ति है। बात को संक्षेप में कही जाती है। रीतिकाल के कवि बिहारी इस कला में सिद्धहस्त थे। डॉ. मिश्र ने भी सूत्रात्मक ढंग से अपने विचारों को संक्षिप्त किन्तु स्पष्ट रूप से व्यक्त करते हैं. 'पवनपुत्र' उपन्यास में डॉ. मिश्र ने श्रीराम जी के मुख से कहलवाया है कि "दुश्चिन्ता सर्वप्रथम आत्मविश्वास को ही निर्मूल करती है।" पृ. 55

'पहला सूरज' उपन्यास में शिवाजी द्वारा अकाल के समय प्रजा के लिए कल्याणकारी अनुष्ठान करने पर उनके मन में अहंकार भाव जागृत होता है तब समर्थ गुरु रामदास उन्हें सावधान करते हुए जो बात कहते हैं वह शिवाजी के लिए आँखें खोलनेवाली बात होती है। यथा - "अहंकार के आगमन के साथ ही व्यक्ति का अध:पतन आरम्भ हो जाता है।" पृ. 346

ऐसे तो कई सूत्र-सूक्तियाँ डॉ. मिश्र के उपन्यासों में आते हैं।

4. आलंकारिक शैली

पहले भी हम निर्दिष्ट कर चुके हैं कि डॉ. मिश्र के औपन्यासिक गद्य में आलंकारिक शैली के समावेश के कारण काव्य-का-सा आनंद प्राप्त होता है। तभी तो उनके उपन्यासों में नए रूपक, नए विशेषण और नए उपमानों की बहुलता पाई जाती है। उसके अनुरूप परिवेश भी उन्होंने चुना है। 'पीतांबरा' उपन्यास में पृ. 234-235 पर मीरा के बढ़ने का विस्तृत वर्णन किया है वह आलंकारिक बन पड़ा है। इसी उपन्यास में क्रोध और व्यग्रता के कारण राणा सांगा अपने कक्ष में चक्कर लगा रहे थे क्योंकि अपने पुत्र के विवाह का प्रस्ताव लेकर मेड़ता गया राजपुरोहित दो दिन तक वापस नहीं लौटा था। उनकी ऐसी स्थिति का वर्णन लेखक ने आलंकारिक भाषा में किया है। यथा-

"उनके गले से लटकती मौक्तिक माला उनके विशाल वक्ष पर ठीक उसी तरह उठ-गिर रही थी जैसे सागर-तल पर लहरें उठतीं-गिरती हैं। उनका मस्तिष्क किसी कुम्भकार के चक्र की तरह ही इस तीव्रता से चक्कर काट रहा था कि किसी बलशाली धनुर्धर के धनुष की तरह ही टेढ़ी हो रही थीं और फड़कते नथुनों से इस प्रकार गर्म फुफकार छूट रही थी कि मानो कोई कृद्ध वृषभ सांसे ले-छोड़ रहा हो। और जब तक क्रोध का आवेश हो तब तक बुद्धि के कार्य करने का प्रश्न ही नहीं उठता। उसकी तो नियति ही थी ऐसी स्थिति में चक्रायित होने की और चक्रायित

होकर व्यक्ति के विवेक को भ्रष्ट करने की । उसे निर्णय-अनिर्णय, निश्चय, अनिश्चय के मध्य आंधी में झूलते किसी आम्र-फल की तरह दोलायमान करते रहने की।" पृ. 239

5. तर्कयुक्त गंभीर शैली

डॉ. मिश्र के सभी उपन्यासों में इस शैली की भी प्रधानता देखी जाती है, चाहे सामाजिक उपन्यास हो, ऐतिहासिक उपन्यास हो या पौराणिक उपन्यास हो। डॉ. मिश्र ने अपने विचारों को युक्तियुक्त होने का विश्वास तर्कपूर्ण शैली में कराया है। यहाँ पर एक उदाहरण द्वारा हम इस बात को स्पष्ट करना चाहेंगे. 'नदी नहीं मुड़ती' की नायिका सुषमा प्रोफेसर सागर चौधरी को कहती है कि अगर मूर्तियों में भगवान बसता है तो गोरी और गज़नवी के समान बर्बर आक्रामक मूर्तियों को ध्वस्त करते रहे तो भगवान कहां सोया रहा? भारत की धर्मान्ध जनता ऐसे अकर्मण्य देवी-देवताओं के हाथ जोड़ती है और अपनी सारी उपलब्धियों-अनुपलब्धियों का श्रेय इन्हें ही प्रदान करती है। प्रोफेसर सागर मूर्तिपूजा में आस्था रखने वाले व्यक्ति हैं। वे अपने तर्क द्वारा सुषमा को निरुत्तर कर हेते हैं। "बहुत कटु बन रही हो सुषमा। पर, तुम्हारा तर्क तुम्हारे बचपने का ही द्योतक है। भगवान इतना सस्ता नहीं जितना तुम समझती हो। ईश्वर को पूरी तरह तटस्थ और उदासीन माना गया है वह ऐसा हलका नहीं कि कोई उसकी मूर्ति को अपवित्र करे और वह हाथ में तलवार लेकर खड़ा हो जाए। अगर ऐसा होने लगा तो तुम ही कहना शुरु करोगी कि कैसा है यह भगवान जो छोटी बात पर भी आ खड़ा होता है? इस पूरे विश्व ही नहीं सम्पूर्ण ब्रह्मांड में कार्य-कारण (कॉज-इफेक्ट) सम्बन्ध चलता है। जो जैसा करता है उसका फल उसे समय से मिलता ही है। ईश्वरीय नियम तो ईश्वरीय, तुम सांसारिक व्यवहारों में भी देखो क्या कोई आदमी हत्या करता है तो प्रेसीडेंट या प्रधानमंत्री वहाँ आकर खड़ा हो जाता है दंड देने? या कानून अपने अनुसार कार्य करना आरम्भ करता है? जब हमारे यहाँ हत्यारे के समान अपराधी को भी दंडित होने में चार-छ वर्ष लग जाते हैं तो तुम उम्मीद क्यों करती हो कि ईश्वरीय विधान में हर जगह देवी-देवता और भगवान ही दंड देने को खड़े हो जाएँ? सब कुछ नियम से बंधा है सुषमा, हर अच्छे बुरे कार्य का फल मिलता है। जैसे हर बीज में अंकुर आता है उसका पौधा बनता है, उसमें फल-फूल लगता है उसी तरह ईश्वरीय विधान के अंतर्गत न तो अच्छा कार्य बिना पुरस्कार के जाता है न बुरा कार्य बिना दंड के। पृ. 71-72

6. प्रश्न शैली

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में प्रश्नों की एक माला-सी चलती है। इस शैली का प्रयोग भी उनके उपन्यासों में बहुलता से पाया जाता है। यहाँ पर एक-दो उदाहरण दृष्टव्य हैं।

'पीताम्बरा' उपन्यास में जयमाल की विधि सम्पन्न कर लौटी मीरा के मस्तिष्क पर बरसात की बौछार की तरह प्रश्नों की बौछार आरम्भ हो जाती है -
''क्यों नारी इतनी अबला है, इतनी परवशा?''

- क्यों इस पुरुष-प्रधान समाज में वह पुरुष की हर इच्छा पर बलि होने को विवश है?
- क्यों उसको अपने जीवन को भी अपने रूप में जीने का अधिकार नहीं है?
- पुरुष अगर अविवाहित रह सकता है तो नारी क्यों नहीं विवाह के बन्धन से मुक्त रह सकती?
- क्यों उसे भक्ति का, भजन का, सत्संग का भी अधिकार नहीं है? उसे नहीं है तो पुरुष को क्यों है?
- क्यों अभिशप्त है वह जिस किसी की गर्दन में बांध दिए जाने को?
- क्यों आँसू, रुदन और अंगारे ही भरे गए नारी के आंचल में?
- क्यों और कब तक होता रहेगा नारी का यह शोषण?
- कैसे और कब वह खड़ी होगी पुरुष की मनमानी के विरुद्ध सीना तानकर?''

पृ. 287

'का के लागूं पांव' उपन्यास मे गुरु तेगबहादुर पाटलिपुत्र से पंजाब की ओर प्रस्थित हो जाते हैं। उनका मन उद्वेलित और अंतर आंदोलित हो रहा था। उन्हें लग रहा था कि उनके पुत्र की अश्रुपूरित आँखें भी उनके पीछे भागी जा रही थीं। उन आँखों में अनेक प्रश्न थे-

''मेरा क्या अपराध है पिता, जो मैं तुम्हारे स्नेह से वंचित रहने को बाध्य हूँ?''

''मेरा क्या दोष है पिता, कि तुम मेरे जन्म के समय अनुपस्थित रहे ही, मेरे बाल्यकाल के भी साक्षी नहीं रहे और जब आये भी तो मात्र मेरे मुख-दर्शन के लिए?''

''क्या इतने से ही तुम्हें संतुष्टि उपलब्ध हो गई मेरे जन्मदाता?''

''क्या कर्तव्य सचमुच प्रेम से बड़ा है पिता, और अगर हां तो तुमने प्रेम का

माया-जाल फैलाया ही क्यों? क्यों बसाया परिवार, क्यों जन्म दिया पुत्र को?''

''माना कि तुम्हारे दायित्व बड़े हैं पिता, और वे तुम्हारा पूरा ध्यान चाहते हैं पर क्या अपने किशोर पुत्र के प्रति तुम्हारा कोई दायित्व नहीं बनता? एक दायित्व को निभाने की धुन में क्या तुम दूसरे दायित्व की उपेक्षा नहीं कर रहे और यह उपेक्षा क्या उस गुरु को शोभती है जो गुरु होने के साथ-साथ एक शिशु का जनक भी है? शिशु जो अब बालक से किशोर बननेवाला है और किसी वृक्ष के बिरवे की तरह ही इसे स्नेह-सिंचन की नितान्त आवश्यकता है?''

''यह कैसा धर्म है पिता, अन्यथा कैसा पंथ जो दूसरों को तो प्रेम और स्नेह का संदेश देता है और अपनों को उन्हीं से वंचित करता है?'' पृ. 203-204

7. चिन्तनप्रधान शैली

डॉ. मिश्र एक बहुपठित विद्वान व्यक्ति हैं। अतः उनके उपन्यासों में भी चिन्तनात्मक शैली का प्रयोग हुआ है। यहाँ पर 'शान्तिदूत' उपन्यास का एक उदाहरण दृष्टव्य है। यथा - 'चरखे को लेकर गाँधी की व्यग्रता बढ़ती गयी। साबरमती आश्रम में आनेवाले हर पुरुष और स्त्री से और बात करते या नहीं करते, चरखे की बात तो अवश्य करते। उन्हें ठीक ही लगा था कि आगे की कताई और करघे पर कपड़े की बुनाई आरम्भ हो जाए तो देश एक तरह से आर्थिक मामले में पूर्ण तथा स्वावलम्बी बन जाएगा। अन्न की अभी ऐसी कोई घोर समस्या नहीं थी। अधिकांश भारतवासी कृषक थे और धरती प्रकृति की कृपा से अभी तक शस्य श्यामला थी क्योंकि पर्यावरण के असंतुलन के कारण बादलों ने अभी खेतों की ओर से मुँह मोड़ना आरम्भ नहीं किया था। अन्न के साथ अगर वस्त्र की समस्या का भी समाधान हो जाता तो एक स्वावलम्बी देश स्वतंत्रता की लड़ाई में वृद्धिशील आत्मबल और द्विगुणित-त्रिगुणित आत्मविश्वास के साथ कूद पड़ता। पृ. 133

8. तरंग शैली

तरंग शैली में समुद्र की लहरों या तरंगों की तरह विचार या भाव रह-रहकर आते हैं। जैसे तरंग पर चढ़े मनुष्य के मन में भाँति-भांति के विचार आते हैं, कभी कुछ सोचता है, कभी कुछ, उसी प्रकार इस शैली में भी होता है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों के पात्रों के मन में उठता वैचारिक द्वन्द्व तरंग शैली का ही परिचायक है। 'देख कबीरा रोया' उपन्यास में कबीर रामानंद को अपने गुरु के रूप में पा लेते हैं

और उसके पश्चात् उनके पिता उन्हें बुरी तरह से लताड़ते हैं तब कबीर जो मनोमंथन व्यक्त करते हैं वह इस प्रकार है - ''सचमुच यह कुकृत्य था क्या? अकरणीय? अपने ही विश्वासों की बलि चढ़ाने के उपक्रम के सिवा यह कुछ और नहीं था? कथनी और करनी में अंतर का इससे अच्छा उदाहरण क्या हो सकता था? पिता गलत किधर से थे? एक मानव गुरु की तलाश के लिए विक्षिप्तता की सीमा का भी उल्लंघन कर जाना शोभनीय था, किसी के लिए? विशेषकर जो स्वयं विश्व-गुरु के सिंहासन पर विराजमान होकर सभी के लिए फतवा जारी कर रहा हो - हिन्दुओं के लिए भी, मुसलमानों के लिए भी? जो बार-बार गला फाड़कर कहता रहा हो कि भक्ति ही बड़ी चीज है, संसार से उद्धार की एकमात्र युक्ति, वह अपने ही सहारे के लिए किसी मनुष्य की शरण में जाने के लिए क्यों विवश हुआ वह भी अकल्पनीय अचिंत्य रूप में? रामानंद को पाने के लिए मैंने जितना कुछ किया उतने पर राम ही नहीं मिल जाते क्या?

'पीतांबरा' उपन्यास में मीरा के पिता धर्मसंकट में थे। वीरमसिंह मीरा को सामान्य नागरिकों के समक्ष भजन-कीर्तन करने और नृत्य-मग्न होने की अनुमति प्रदान करने के पक्ष में नहीं थे जबकि रतनसिंह की पत्नी और उनके पिता दूदा मीरा में कृष्ण-भक्ति और मानव-संवेदना के संस्कार भरना चाहते थे, यह बात को लेकर वे चिन्तित थे कि मीरा को इस पथ पर बढ़ने से कैसे रोकें? यहाँ पर बहुत ही संक्षेप में हम उनके मन में उठते विचार-तरंगों को निम्नांकित कर रहे हैं-

''तब क्या राव वीरम उनकी सम्मति को आँखें मूंदकर मान लेंगे? मेड़ता के सिंहासन पर तो वही आसीन हैं। राज-परिवार की प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा की चिन्ता स्वभावतः उन्हें रतनसिंह की अपेक्षा अधिक थी। तब क्या वह राजमुकुट के एक हीरे को मेड़ता की मिट्टी में लोटने के लिए छोड़ देंगे? ऐसा करने से सम्पूर्ण राज्य की प्रतिष्ठा ही क्या धूमिल नहीं हो जायेगी? साधारण जन को राव दूदा के प्रायश्चित भाव तथा रतनसिंह और उनकी दिवंगता पत्नी की भक्ति-भावनाओं से क्या लेना-देना?'' पृ. 219

9. धारा-प्रवाह शैली

धारा-प्रवाह शैली में प्रवाह और गति होती है। लेखक की हृत-तंत्री एक ही दिशा में अग्रसरित होती है और विचार, भाव, बिम्ब धारा के रूप में प्रस्फुटित होते हैं। इस शैली का प्रयोग भी डॉ. मिश्र के उपन्यासों में अनेक स्थानों पर देखा जाता

है। 'शान्तिदूत' उपन्यास की शुरुआत ही इस शैली से होती है- ''कैसा लगता है जब अपमान के दंश को निःशब्द झेलना पड़ता है? कैसा लगता है जब प्रतिकार की शक्ति होने के बावजूद असहाय-सा अप्रीतिकर अन्याय को झेलने को विवश होना पड़ता है? कैसा लगता है जब यह अपमान, यह अन्याय एकान्त में नहीं अपितु सार्वजनिक रूप में झेलने को बाध्य होना पड़ता हो? जब अनेक के मध्य एक को निरीह-सा वह सब कुछ सहना पड़ता है उस उत्पीड़न और अपेक्षा को शिरोधार्य करना पड़ता है, निर्विरोध एवं निस्सहाय।'' पृ. 7

'सूरज के आने तक' उपन्यास में नूनूबाबा द्वारा दिया गया निम्नलिखित वक्तव्य धारा-प्रवाह शैली का एक अच्छा उदाहरण है। यथा - ''यह इसलिए शादी नहीं करना चाहता कि राधा के द्वारा किया गया त्याग इसके लिए भारी पड़ रहा है। यह नहीं चाहता कि राधा नौकरी छोड़कर दर-दर की भिखारिन बन जाए। और राधा है कि ठुकराई नौकरी वापस लेने को तैयारी नहीं। पर, यह शादी होकर रहेगी। बाबा ने अपने शब्दों पर जोरे देते हुए कहा, मैंने इसका रास्ता निकाल लिया है। मैंने अपनी सारी सम्पत्ति-पचास बीघे जमीन पर मन्दिर और मन्दिर का प्रांगण - सब कुछ राधा के नाम कर दिया है। परियोजना पदाधिकारी को मैंने दस्तखत करके सारे कागजात दे दिए हैं। वे कल सासाराम में मेरे वकील से मिलकर बाकी काम करा लेंगे। अब राधा को अपना सेवा-केन्द्र खोलने के लिए बगल के गाँव में जाने की आवश्यकता नहीं। जिस मन्दिर मे आज तक मेरे कृष्ण-कन्हाई की पूजा होती रही उसी से अब दीन-दुःखियों की सेवा पूजा आरम्भ होगी। इसी में खोला जाएगा सेवा केन्द्र। जहाँ से अब तक अध्यात्म की किरणें विकीर्ण होती रहीं, वहीं से उठेगी अब ज्ञान की अलौकिक आभा जो इस पूरे क्षेत्र से अज्ञान और अंधविश्वास के साम्राज्य को समाप्त करके रहेगी। यहीं होगा राधा और लालमोहर का मुख्यालय - अज्ञान और अनास्था के इस घोर मरु के मध्य ज्ञान और आस्था की आशाप्रद ओयसिस - घोर अंधकार में भटकती इस क्षेत्र की मूक मानवता के पथ को प्रकाशित करता ज्ञान और विश्वास का सबल प्रकाश स्तम्भ। साक्षी रहे यह समाज और साक्षी रहे ये देवमूर्तियाँ कि बेनसागर की इस धरती पर जन्मी है क्रान्ति की यह ज्वाला जो जलाकर रहेगी संकीर्णताओं और अंधविश्वासों की होली, जगाकर रहेगी युग-युग से सोई मानवता को...। दिखाई पड़ने लगा है क्षितिज के पार एक नया विधान। कोई नहीं रोक सकता इस नये सूरज को उगने से, तैयार हो जाओ सभी उसके अर्घ्य दान के लिए - तमसो मा ज्योतिर्गमय...।'' पृ. 166

10. परिगणनात्मक शैली

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में प्रसंगानुसार कहीं-कहीं परिगणनात्मक शैली का प्रयोग भी हुआ है। यहाँ पर 'पीतांबरा' उपन्यास का उदाहरण दृष्टव्य है। यथा - "पूंगी फल, आम्र-पल्लव, हल्दी, दूर्वा, कदली-स्तंभ, जावा-कुसुम, गंध, असगंध, सुगंध रोली, अक्षत, चन्दन, अबीर, गुलाल, दूध, दही, मधु, मखाना, कलश, धूप, दीप, नैवेद्य के विभिन्न प्रकार आदि रतनसिंह ने दूसरे दिन ही जुटा लिया। पंच नदियों का जल - गंगा, यमुना, गोमती, गोदावरी और चारों तीर्थों - रामेश्वर, पुरी, द्वारिका और बद्रिकाश्रम की पवित्र मिट्टी पहले से ही घर में सुरक्षित थी।" पृ. 65

'गोबिन्द गाथा' उपन्यास में गुरु गोविन्दसिंह की रचना 'चौबीस अवतार' में गुरु साहब द्वारा वर्णित चौबीस अवतारों में शेष अवतारों के नाम दिए हैं। जिसमें परिगणनात्मक शैली के दर्शन होते हैं। यथा - कच्छप, नर, मोहिनी, नारायण, वाराह, नृसिंह, वामन, परशुराम, ब्रह्मा, रुद्र, जालंदर, विष्णु, हयशीर्ष, अरहंत देव, मनु, धन्वंतरी, सूरज, चंद्रमा, रामचंद्र, अर्जुन, बुद्ध, महावीर, कल्कि। पृ. 110

11. प्रश्नोत्तर शैली

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में इस शैली का सुन्दर ढंग से प्रतिपादन हुआ है। उनके उपन्यासों में प्रयुक्त प्रश्नोत्तर शैली बड़ी सरल और स्पष्ट है। 'पवनपुत्र' उपन्यास में हनुमान जब लंका में प्रवेश करते हैं तब उनके और लंकिनी के बीच में संवाद का सुन्दर समायोजन किया है। यथा-

"मैं तुम्हें चोर लगता हूँ"

"लगना क्या है? चोर तो तुम हो ही।"

"और वह क्या है?"

"कौन?"

"जिसकी लंका की रक्षा में तुम तत्पर हो।"

"रावण?"

"रावण नहीं चोर है? महाचोर । इतने बड़े चोर की तुम चिरौरी कर रही हो और मैंने कुछ भी नहीं चुराया, उसे तुम चोर कह रही हो।" मैं भी अब क्रोध के वश हो चला था।

"रावण चोर है? वह तो शिव-भक्त, महा याजिक, वेदज्ञ ब्राह्मण है। वह

चोर कैसे है?'' देवी ने आश्चर्य से पूछा।

''यही तो बात है। दीपक तले का अंधेरा दीपक को कहाँ दिखाई पड़ता है? रावण से बड़ा चोर कौन होगा? जो किसी का मान, किसी की इज्जत, किसी का स्वाभिमान चुरा ले, उससे बड़ा भी कोई चोर होता है? पर स्त्री को जो निर्जन स्थान से श्वान की तरह हर ले, उसे चोर नहीं तो और क्या कहेंगे?'' पृ. 115।

'प्रथम पुरुष' उपन्यास में राधा-कृष्ण के बीच की प्रश्नोत्तर शैली में सुन्दर संवाद-योजना दृष्टव्य है। यथा-

''कि तुम निस्संग भाव से ही वह व्यवहार कर रहे थे और यह कि तुम मेरे अतिरिक्त किसी और के नहीं हो।''

''पहले का प्रमाण तो कल मिल जाएगा, दूसरे के सम्बन्ध में शायद तुम सुनना नहीं चाहोगी।''

''ऐसी क्या बात है?'' राधा के चेहरे पर प्रतिक्रिया नहीं थी।

''तो सुनाऊँ?''

''सुनाओ।'

''तुमने मेरा चित्र अपने पास रखा है न?

''हाँ, उसकी रोज पूजा करती हूँ।''

''क्यों?''

''क्योंकि विशुद्ध प्रेम पूजा ही है।''

''और अब क्या करोगी?''

''उसका अर्थ?''

''अब जब तुमने देख लिया कि मैं एक के बदले अनेक के साथ था?''

''इस पर बाद में विचार करुँगी। तुम्हारी बात सुनकर।''

''तो जानती हो इस चित्र को बनानेवाली का नाम क्या था?''

''नहीं, और यह था क्यों बोल रहे हो?'' राधा कुछ सशंकित होकर बोली।

''नहीं जानती हो तो जान लो, वह गोकुल की सर्वश्रेष्ठ सुन्दरी थी। उसका नाम चित्रा था और यह 'थी' और 'था' इसलिए कि अब वह इस दुनिया में नहीं रही।''

''क्यों?' राधा का स्वर आश्चर्य और उत्सुकता से मिश्रित था।

''क्योंकि उसने कहा कि श्याम का चित्र बनाने के लिए उसे श्याम को अपने अन्दर उतारना पड़ेगा और मैंने छूटते ही कहा कि नहीं, नहीं मैं एक के अन्दर उतर चुका हूँ, अब दूसरे के अन्दर नहीं उतर सकता, मुझे कभी भी अपने अन्दर उतारने का प्रयास नहीं करना।''

''और?'' राधा की उत्सुकता बढ़ गई।

''और वह यमुना की श्याम-लहरियों को अपने अंक में समेटने का प्रयास करते-करते मध्य धार में समाधिस्थ हो गई। इसके पूर्व उसने मेरा चित्र बनाकर किनारे पर रख दिया था।

12. उद्धरण शैली

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में उद्धरणों का प्रयोग बहुलता से हुआ है। उन्होंने अपने विचारों, मन्तव्यों और सिद्धांतों की पुष्टि के लिए शास्त्रों के प्रमाण स्वरूपण उद्धरण प्रस्तुत किए हैं। इसका निर्देश हम चतुर्थ अध्याय में उद्धरण के अंतर्गत कर चुके हैं। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में उद्धरणो द्वारा पात्रों की आन्तरिक इच्छाएँ, भावनाएँ तथा मनोभावों की कलात्मकता का सन्निवेश देखने को मिलता हैं । अज्ञेय के उपन्यासों में भी यह प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। 'सूरज के आने तक' उपन्यास में लालमुहर ने कालिदास द्वारा रचित 'मेघदूत' की यक्षिणी पर लिखी पंक्तियों को राधा के लिए कहा है। इसी उपन्यास में लेखक ने लालमुहर के मुख से अन्य पंक्तियों की रचना भी करवाई है। यथा-

''तकते जब अवनि को हैं नभ में पक्षी-युग उड़ते
चीं-चीं आपस में करते मानो कुछ करते बातें,
लगता वे पूछ रहे हों जीवन पथ यह एकाकी
कैसे तुम पार करोगे, पथ लम्बा तो अभी बाकी।'' पृ. 73

'प्रथम पुरुष' उपन्यास में भी राधा की सखी जयप्रभा अपने भावों की अभिव्यक्ति इस प्रकार करती है-

''वृन्दावन सो वन नहीं नहीं श्याम सो यार।
राधा सी कोई नारी नहीं, न ललिता-सी कोई नार।।'' पृ. 211

13. व्यंग्य शैली

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में व्यंगीय तिक्तता भी मिल जाती है। जब वे समसामयिक सन्दर्भ में अपने विचार प्रकट करते हैं तब उनकी व्यंगीय तिक्तता भी उभरकर आती है। 'एक और अहल्या' उपन्यास में लेखक ने मनीष के माध्यम से तथाकथित नास्तिकों पर व्यंग्य किया है। यथा- ''तुम्हें पता नहीं कि मैं भगवान में विश्वास करता हूँ? मैं तथाकथित नास्तिकों या प्रगतिवादियों में नहीं जो सबके सामने तो ईश्वर के नाम पर नाक-भौं सिकोड़ते हैं और जब अपने पर थोड़ी-बहुत भी विपत्ति आ पड़ती है तो उनकी सारी खोखली प्रतिबद्धता रेत की दीवार की तरह ढह पड़ती है और वे मन-ही-मन हनुमान चालीसा का पाठ शुरु कर देते हैं, साथ ही रात के अंधेरे में पवन-सुत की मूर्ति के दर्शन कभी कर आते हैं और प्रसाद भी पा लेते हैं।'' पृ. 126

14. सरल-सुबोध शैली

डॉ. मिश्र के उपन्यासों ने भाषा की कलिष्टता नहीं है किन्तु सरलता है। उनके सामाजिक उपन्यासों की भाषा-शैली तो बहुत ही सरल हैऔर वाक्य प्रायः छोटे-छोटे हैं। यहाँ पर 'सूरज के आने तक' उपन्यास के नूनूबाबा राधा को समझाते हुए जो बातें कहते हैं उससे उनके तथा राधा और लालमोहर के चरित्र की विशेषताएँ भी उभरकर आ जाती हैं। यथा -

''लालमोहर के साथ शादी की बात तक तो मेरी समझ मे आई। कोई हर्ज नहीं है इसमें। इसलिए नहीं कि लालमोहर के लिए मेरे मन में विशेष कमजोरी है, बल्कि इसलिए कि तुम दोनों ने इसमें अपना सुख देखा। इसके अलावा इससे समाज के समक्ष एक उदाहरण भी प्रस्तुत होता है। अब तक लोग इस पिछड़े इलाके में अन्तरजातीय विवाह के नाम पर नाक-भौं ही सिकोड़ते रहे हैं। अब वे भी देख लेंगे कि बाबा केवल सिद्धांत की ही बातें नहीं करते, व्यवहार में भी वे...। पर, यह लगी-लगाई नौकरी को ठोकर मारने की बात, मेरी समझ में नहीं आई। क्या तुम लालमोहर के धरातल पर उतरकर ही उसे पाना चाहती हो? क्या तुम्हें लगा है कि उसे अपने बौनेपन का एहसास होने लगा है? ऐसा तो नहीं है लालमोहर। अपने को किसी से कम समझने की बात उसने स्वप्न मे भी नहीं सीखी।'' पृ. 156

15. संस्कृतनिष्ठ शैली

डॉ. मिश्र की भाषा संस्कृतप्रधान है। परन्तु उनके कई उपन्यासों में तो पूरे-के-पूरे कथन संस्कृत में आए हैं। उनके 'पीतांबरा', 'देख कबीरा रोया' और 'पवनपुत्र' उपन्यासों में यह प्रवृत्ति अधिक झलकती दिखाई देती है। हम तृतीय अध्याय के अन्तर्गत उदाहरण सहित इसकी चर्चा कर चुके हैं। अतः यहाँ एक ही उदाहरण दिया जा रहा है - 'पवनपुत्र' उपन्यास में पशुपति शिव और हनुमान के बीच संस्कृत भाषा में संवाद होता है-

"सम्पन्नं अध्ययनम्?" पशुपति ने मेरी ओर देखते हुए देववाणी में पूछा था।

"जातं।"

"श्रुतं यत् वेदोपनिषद् पुराण ज्ञाता भगवान् सवितैव गुरु रूपेण गृहीतः भवता। नूनं अनेन गायत्री मन्त्रस्य च अधिष्ठात्रा देवेन विधिविधान संयुक्ता सकला विद्या परा च अपरा च प्रदत्ता सम्यक् रूपेण।"

"प्रदत्ताः अत्र भवता सवित्रा, सर्वाः विद्याः उन्मुक्त भावेन; न किंचित गोपितं भगवता भाष्करेण सकल ज्ञान युक्तेन। मया गृहीताः वा न वा कथं विज्ञापयामि?" पृ. 29

16. अरबी-फारसी वाली शैली

डॉ. मिश्र के ऐतिहासिक और सामाजिक उपन्यासों में अरबी-फारसी शब्दों की बहुतायत पाई जाती है। डॉ. मिश्र के 'देख कबीरा रोया', 'का के लागूं पांव', 'गोबिन्द गाथा', 'देख कबीरा रोया', 'पहला सूरज' तथा 'शान्ति दूत' जैसे उपन्यासों में अरबी-फारसी के काफी शब्द-प्रयोग मिलते हैं। 'गोबिन्द गाथा' उपन्यास में गुरु गोविन्दसिंह औरंगजेब को ज़फ़रनामा (विजय-पत्र) लिखते हैं। जिसमें अरबी-फारसी शब्दों की बहुतायत पाई जाती है और औरंगजेब की विशेषताओं को भी हमारे सामने प्रस्तुत कर देती है। यथा - "बादशाहों के बादशाह, काबिल तलवारबाज और घुड़सवार, औरंगजेब, तू खुशनसीब है। तैरी शख्सियत खूबसूरत है, खूद तू अक्लमंद है। मुल्क के हाकिम और बादशाह, तू अपनी सल्तनत के काम अक्लमंदी से करता है और तलवार चलाने में माहिर है। तू अपने हम-मजहबों के लिए उदार है और अपने दुश्मनों को कुचलने में फुर्ती रखता है। तू सल्तनतों और खजानों का मालिक है। तू खूले हाथ से देता है और जंग में पहाड़ की तरह जमा रहता है। तेरा ओहदा बुलंद है। तेरी ऊँचाई सितारों जैसी है। तू सुल्तानों का सुल्तान है। दुनिया के तख्तों

का आभूषण है। तू दुनियाभर का शाह है लेकिन (सब कुछ होते हुए भी) मजहब तुझसे कोसों दूर है।''   पृ. 300

17. अंग्रेजीप्रधान शैली

डॉ. मिश्र के 'सूरज के आने तक', 'नदी नहीं मुड़ती', 'एक और अहल्या', 'लक्ष्मण-रेखा', 'पहला सूरज' तथा 'बंधक आत्माएँ' जैसे उपन्यासों में अनेक पात्रों के मुँह से अंग्रेजी शब्द आए हैं जिनका निर्देश हम चतुर्थ अध्याय के अन्तर्गत कर चुके हैं। 'शान्तिदूत' उपन्यास में तो पूरे के पूरे कथन अंग्रेजी में आए हैं जिनका निर्देश हम तृतीय अध्याय के अन्तर्गत कर चुके हैं, अतः यहाँ पर एक उदाहरण दृष्टव्य है।

'दक्षिण अफ्रीका में भारतीयों के साथ कैसा व्यवहार किया जाता था इसका पता हमें निम्नलिखित संवाद से चलता है। साथ ही हमें यह भी पता चलता है कि सारे अंग्रेज बुरे नहीं थे। प्रिटोरिया के लिए गाँधीजी फर्स्ट क्लास की टिकट लेकर गाड़ी में बैठते हैं। कुछ स्टेशनों के पश्चात् गार्ड आ पहुँचता है। वह उन्हें थर्ड क्लास के डिब्बे में जाने को बोला पर गाँधी अड़ गए, ''आई ऐम ए फर्स्ट क्लास टिकट होल्टर।''

''सो व्हाट? गेट आउट एट वन्स।'' गाँधी बैठे रहे। गार्ड की आँखें क्रोध से रक्ताभ हो रही थीं। इसके पूर्व कि नेटाल वाली घटना यहाँ भी दुहराई जाये और उन्हें सरो-सामान के साथ प्लेटफॉर्म पर फेंक दिया जाये गाड़ी में बैठा एक मात्र अंग्रेज गार्ड से बोल पड़ा, ''व्हाई डू यू हैरेस हिम? कान्ट यू सी दैट ही होल्ड्स ए फर्स्ट क्लास टिकट?''

फिर वह भला अंग्रेज गाँधी की ओर मुड़ा, ''नेवर माइंड, यंग मैन। आई हैव नो आब्जेक्शन इन ट्रैवलिंग विद यू।''

गार्ड धीरे से बड़बड़ाया, ''इफ यू लाइक टू ट्रेवेल विद ए कुली, व्हाट कैन आई डू।''पृ. 46

18. आंचलिक शैली

आंचलिक शैली : डॉ. मिश्र के उपन्यासों में बंगाली, पंजाबी, राजस्थानी, भोजपुरी परिवेश के अनेक पात्र आए हैं। अतः परिवेश के अनुसार उन पात्रों की भाषा-शैली में उपर्युक्त भाषा या बोलियो के शब्द बहुतायत से मिल जाते हैं। तृतीय अध्याय के अन्तर्गत हम इसकी चर्चा कर चुके हैं। अतः यहाँ पर एक ही उदाहरण

हम दे रहे हैं। 'शान्तिदूत' उपन्यास में गाँधीजी का 'अमृत बाज़ार' पत्रिका के सम्पादक के सहायक का कटु अनुभव होता है। उसका चित्रण सुन्दर बंगाली संवाद योजना द्वारा हुआ है। यथा-

"आपनि के?"

गांधी ने इस प्रश्न को नहीं समझे तो बगल में खड़े एक सज्जन-से व्यक्ति ने दुभाषिया का कार्य किया, "यह पूछ रहे हैं कि आप कौन हैं?"

"मैं गाँधी, मोहनदास करमचंद गाँधी।"

"गाँधी के? गाँधी के? आमि जानि ना गाँधी-आंधी। कि कथा आछे? (गाँधी कौन? गाँधी कौन? मैं किसी गाँधी-आँधी को नहीं जानता। क्या बात है?)....."

"मैं अफ्रीका में प्रवासी भारतीयों के लिए काम करता हूँ, उसी संबंध में मैं संपादक महोदय से मिलना चाहता हूँ।'

"उनिर सांगे दाखा होबे ना। अनेक काज आछे एउखाने। अफ्रीका-तोफ्रीका आमरा जानि ना। आपनि जान।" (उनके साथ भेंट होगी नहीं। यहाँ बहुत काम पड़ा है। अफ्रीका-तोफ्रीका हम नहीं जानते। आप तशरीफ ले जाइये।)

'मुझे एक मिनट के लिए...'न गाँधी ने मुँह ही खोला था कि वह बंगाली-सहायक फट पड़ा, "आमि बूझि जे आपनि भोद्र लोक किन्तु ता बोधाय सोत्य नई। आपना के जातेई होबे। ए खुनि।" पृ. 54

डॉ. मिश्र के औपन्यासिक गद्य-शैली की कतिपय विशेषताएँ

जिस लेखक का जितना गंभीर और विस्तृत अध्ययन होगा, उसके विचार जितने स्पष्ट और प्रभावपूर्ण होंगे, उसकी भाषा-शैली का सौन्दर्य भी उतना ही आकर्षक एवं प्रभावशाली होगा। लेखक की कलाक्षमता का परिचय उपन्यास की भाषा-शैली से ही हो सकता है। डॉ. मिश्र की की औपन्यासिक गद्य-शैली पर समग्रावलोकन करने पर हमें निम्नांकित विशेषताएँ परिलक्षित होती हैं - सार्थक कथोपकथन, बहुश्रुतता, संक्षिप्तता, सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता, नूतन, भाषाभिव्यंजना आदि। यहाँ अति संक्षेप में उन पर विचार करने का उपक्रम है।

1. सार्थक कथोपकथन :

पात्रों के परस्पर संवाद या वार्तालाप को कथोपकथन कहते हैं। पात्रों के चरित्रोद्घाटन, उनकी मनोभावनाओं के परिज्ञान, कथानक के विकास या उसकी

विलुप्त कड़ियों को जोड़ने तथा विचार या सिद्धांत के निरूपण की दृष्टि से कथोपकथन उपन्यासों में महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। मुन्शी प्रेमचन्दजी के मतानुसार कथोपकथन केवल रस्मी न होकर स्वाभाविक, परिस्थितियों के अनुकूल, सरस और सूक्ष्म होने चाहिए।[3] उनको देशकाल और परिस्थिति के अनुरूप होना चाहिए। कथोपकथन की भाषा और विषय पात्रों के मानसिक धरातल के अनुरूप होना जरूरी है। इस प्रकार उपन्यास के कथोपकथन में स्वाभाविकता, रोचकता, संक्षिप्ति, सार्थकता, सजीवता, प्रसंग एवं पात्रानुकूलता, सरसता,रोचकता, संक्षिप्ति, सार्थकता, सजीवता, प्रसंग एवं पात्रानुकूलता, सरसता और व्यंग्यात्मकता के गुण होना वांछनीय है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों के कथोपकथन-योजना पर विचार करने पर हमें ऐसा लगता है कि पात्रों के संवादों में लखक स्वयं बोल रहे हो। उदाहरणतया 'एक और अहल्या' उपन्यास में सावित्री और विश्वमोहन के बीच जो वार्तालाप होता है, उसमें सावित्री दहेज और दहेज सम्बन्धी कानून के विषय में जिस भाषा द्वारा अपने विचारों को अभिव्यक्तिदेती है वह यथार्थ की दृष्टि से अस्वाभाविक लगती है। किंतु इसका कारण शायद यह है कि लेखक के उन विचारों को अभिव्यक्ति प्रदान करनी है, जो उनके सर्जक के मानस को अभिभूत किए हुए हैं। हाँ, समन्वित रूप में डॉ. मिश्र की औपन्यासिक संवाद-योजना अनेक सराहनीय गुणों से ओत-प्रोत है। उसमें चरित्रोद्‌घाटन, कथा-विकास, तथ्योद्‌घाटन की विशेषताएँ होने के साथ-साथ कथोपकथनों की संक्षिप्ति, सजीवता, रोचकता, स्वाभाविकता, सार्थकता, सरसता, प्रसंग एवं पात्रानुकूलता आदि गुणों का पूर्ण अभिनिवेश मिलता है। हम तृतीय अध्याय के अंतर्गत भी इसकी चर्चा कर चुके हैं, अतः यहाँ पर एक ही उदाहरण प्रस्तुत किया जा रहा है। 'सूरज के आने तक' उपन्यास में भारत सरकार द्वारा प्रायोजित प्रौढ़ शिक्षा की ट्रेनिंग को कार्यान्वित करने की बात है। इस परियोजना के लिए मुहम्मद सत्तार को बिहार के बेनसागर और बाजीतपुर गाँव में भेजा जाता है। दोनों गाँवों के बीच जात-पाँत को लेकर बवाल खड़ा होता है। इसी सन्दर्भ में लालमोहर, नूनूबाबा, नारायण और महादेव के बीच के वार्तालाप से कथा-विकास को गति मिलती है। किन्तु उनके द्वारा प्रयुक्त भाषा से तथ्य का उद्‌घाटन तथा उनके चरित्रों की विशेषताएँ उभरकर आती है। यथा-

''नारायण ने जो बात कही वह भी ठीक, मैंने जो कही वह भी ठीक'' लालमोहर ने आरम्भ किया,'' यह सही है कि झगड़े का बीज पंचायती चुनाव के समय ही बोया गया था, पर पनपा तो आज ही, वह भी जात-पांत के खाद-पानी पर? अब मैं पूरी कहानी कहता हूँ। यह तो बाबा आप भी जानते होंगे कि सरकार

ने एक नई योजना चलाई है, प्रौढ़-शिक्षा की?''

''जानता हूँ इसमें मेरी तरह के बड़े-बूढ़ों को पढ़ाते हैं।'' बाबा ने कहा।

''आपको क्या पढ़ाएँगे बाबा? आप तो स्वयं पंडित हैं। सब शास्त्र-वेद आपकी जीभ पर नाचते हैं। पढ़ाते हैं मेरी तरह के लोगों को जिन्होंने कभी स्कूल-पाठशाला का मुँह नहीं देखा और जिनके लिए काले अक्षर और काली भैंस में कोई भेद नहीं होता।'' महादेव, जो अब तक मुँह बन्द किए बैठा था, बोला।

''तो मैं ही कौन पंडित हूँ?'' नारायण ने कहा, ''पढ़ना तो मुझे भी है, पर यह स्कूल चलने-वलने को नहीं है बाबा, प्रथम ग्रासे मूसिका पातः।''

''मूसिका नहीं मक्षिका'' बाबा ने कहा, ''पर तुम सबों ने मिलकर आज अच्छी कसम खाई है। बात की तह तक पहुँचने ही नहीं देते। अब तो अलाव की आग भी ठंडी होने जा रही है। लाओ कुछ लकड़ियाँ इसमें डालो और जल्दी खोलो यह गुत्थी।''

''ये गुत्थी खोलने भी तो दें बाबा।'' लालमोहर आग पर लकड़ियाँ डालते हुए बोला, ''ये तो बन जाते हैं दाल-भात में मूसलचन्द। बात-बात में काट बैठते हैं मेरी बात को। अब मैं सुनाऊँ तो क्या सुनाऊ आपको? कहिए तो अपने होठों पर ताला लगा दूं? कितनी अच्छी बातें सुननी थीं आपसे। कहाँ जाकर पड़ गया मैं इस प्रौढ़ शिक्षा के पचड़े में?''

''पचड़ा नहीं, प्रौढ़-शिक्षा तो अच्छी चीज है।'' बाबा बोले, ''सरकार ज्ञान के प्रकाश से अज्ञान के अंधकार को समाप्त करना चाहती है। यह तो राष्ट्रीय यज्ञ है। इसमें तो सबको अपनी आहुति डालनी चाहिए। हमारे ऋषि-मुनियों ने भी कहा है। हमारे ऋषि-मुनियों ने भी कहा है - ''तमसो मा ज्योतिर्गमय।'' पर तुम सुनाओ अपनी बात। कौन बन गया इस यज्ञ का राक्षस?''

''अब राक्षस कोई एक हो तो कहूँ बाबा? यहाँ तो पूरे कुएँ में भांग पड़ गई है। अब ये नारायण और महादेव चुप रहें तो मैं सुना ही दूँ पूरी कहानी।'' लालमोहर ने कहा।

''चुप तो हम कब के हो गए बाबा'' महादेव ने कहा ''पर यह न सुनाएगा न सुनाने देगा। यह तो जमाएगा अपनी पंडिताई। मुहावरे और कहावतें उगलेगा। आपकी पोथियों को चाटकर बड़ा ज्ञानी जो बना फिरता है। हूँ!! थोथा चना बाजे घना। अधजल गगरी छलकत जाय।''

''अब लीजिए बाबा। देखिए कौन उगलता है कहावतें?'' लालमोहरने कहा,

''अरे आज यात्रा ही गड़बड़ है, दिन गया महाभारत और शाम को जुए गए ये शकुनी जो अपनी ही हांके जा रहे हैं। गया आज का सत्संग। क्या कहा था आपने एक बार बाबा, काव्य शास्त्र विनो देन......?''

''काव्यशास्त्र विनोदेन कालो गच्छति धीमताम्

व्यसनेन च मूर्खाणां निद्रया कलहेन वा॥''

बाबा ने कहा और फिर जोड़ा, ''पर काव्य शास्त्र का विनोद आज कहाँ हो रहा है, आज तो बात ही शुरु हुई कलह से। बेनसागर और बाजीतपुर के रगड़े से। तुम लोगों ने तो सचमुच आज की शाम खराब कर दी। क्या अच्छी तरह भजन-भाव करता? ले बैठे तुम तुम लोग गाँव-गाँव का झगड़ा और उस पर भी भिड़ाते रह गए चोंचे। न बात इस किनारे लगी, न उस। अब मैं महादेव से ही कहता हूँ कि वह संक्षेप में पूरी कहानी सुनाए। लालमोहर और नारायण, तुम लोग अब बन्द करो अपना मुँह।'' पृ. 7-8

2. बहुश्रुतता

काव्य के तीन हेतुओं में से एक है - व्युत्पत्ति। व्युत्पत्ति का अर्थ है - प्रगाढ़ पांडित्य। लोक, शास्त्र और काव्य के निरीक्षण एवं अध्ययन से वह प्राप्त किया जा सकता है। प्रेमचन्द और नागार्जुन के पात्रों की जीवन्तता उनके लोक-ज्ञान में निहित है। बिहारी के काव्य में उनकी शास्त्र-बहुज्ञता देखी जा सकती है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों को पढ़ने से ज्ञात होता है कि लेखक लिखने से पूर्व गहरी अध्ययन-प्रक्रिया से गुजरे हैं। सिर्फ किताबी अध्ययन ही नहीं किया बल्कि उन्होंने अपने उपन्यासों के पात्रों से सम्बन्धित स्थानों की यात्रा भी की है इतना ही नहीं। उन्होंने वहाँ के लोगों से बातचीत भी की है, साथ ही वहाँ संचालित शोध-संस्थानों से भी सम्पर्क किया है। उनके ऐतिहासिक उपन्यासों को पढ़ने पर इस बात का पता चलता है। लेखक ने पौराणिक उपन्यासों को लिखने के पूर्व अनेक ग्रन्थों का दोहन किया है। डॉ. मिश्र की औपन्यासिक कृतियों में हमें साहित्य, इतिहास, राजनीति, विज्ञान, पर्यावरण, मायथोलोजी, आयुर्वेद, कर्मकांड, ज्योतिष आदि अनेक विषयों की जानकारी प्रसंगानुरूप मिल जाती है।

यहाँ पर एक बात ध्यातव्य रहे कि लेखक की बहुश्रुतता तो उनकी विशेषताओं के अंतर्गत हो सकती है, किन्तु अंततः इन सारी बातों की अभिव्यक्ति तो भाषा-शैली द्वारा ही हो पाती हैं। अतः भाषाशैली की खासियत के रूप में उसका उल्लेख किया

है। हम चतुर्थ अध्याय के अंतर्गत उक्त विषयों से सम्बन्धित कुछेक शब्दों का निर्देश कर चुके हैं। उनकी बहुश्रुतता से सम्बन्धित बहुत-से उदाहरण मिलते हैं किन्तु हमने यहाँ केवल दो उदाहरणों को प्रस्तुत किया है। यथा-

'प्रथम पुरुष' उपन्यास में नित्य हाथियों जूझने के कारण कृष्ण को कई बातों का पता लगा - ''प्रथम तो यह कि हाथी अपनी सूँड का प्रयोग अपने शिकार की समाप्ति के लिए पहले अवश्य करता है। पर उसकी सूँड का अग्र भाग बड़ा संवेदनशील होता है। अगर उसमें एक चींटी भी घुस जाय तो वह व्याकुल हो उठता है। दूसरे उन्होंने यह पाया कि आक्रमण के समय हाथी प्रायः आँखें मूँदकर सीधे टूटता है। अगर ठीक अवसर पर व्यक्ति सामने से हट जाय तो उसके सामने जो रहेगा उसी से हाथी अपना मस्तक भिड़ा देगा, चाहे वह पत्थर की दीवार हो या लौह-स्तम्भ। तीसरी बात उनके ध्यान मे यह आई कि हाथी के दो बाहरी दाँत बड़े दुःखदायी होते हैं। वे अगर किसी प्रकार जड़ से उखड़ गए तो पीड़ा से हाथी के प्राण कण्ठ-गत भी हो सकते हैं।'' पृ. 361

'पीतांबरा' उपन्यास के निम्नलिखित कथन में लेखक की बहुश्रुतता दिखाई देती है। ''सभी प्राणियों में सामान्यतः पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ अवश्य सक्रिय रहती है - आँख, कान, नाह, जिह्वा और त्वचा। छठी इन्द्रिय जो पशु-पक्षियों में अधिक ही जागृत रहती है। पुरुष की अपेक्षा स्त्री मे भी वह अधिक सक्रिय रहती है। यही कारण है कि पशु-पक्षी भूकम्प, तूफान आदि प्राकृतिक आपदाओं तथा कई महामारियों का अनुमान पहले ही लगा लेते हैं। 'प्लेग' की विभीषिका की आशंका हो तो मूषक पहले ही मकानों को छोड़, मैदानों की ओर मुँह करते हैं।'' पृ. 138

3. संक्षिप्तता

संक्षिप्तचता अर्थात् कम से कम शब्दों में कथ्य को प्रस्तुत करना। इस कला में निपुण लेखक अनावश्यक शब्दाडंबर को त्याग कर किसी विषय के मुख्य बिन्दुओं को सार रूप में प्रस्तुत करता है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों में प्रयुक्त सूक्तियों में बड़ी-से-बड़ी बात को अति संक्षिप्त रूप में कहा गया है जिसका निर्देश हम सूक्तियों के अन्तर्गत कर चुके हैं। अतः यहाँ पर कुछ भिन्न उदाहरण दिये गए हैं जो उनकी भाषा-शैली की संक्षिप्तता के द्योतक हैं। 'का के लागूं पांव' उपन्यास में गोविन्दराय अपने पिता गुरु तेगबहादुर को काश्मीर-प्रस्थान के लिए विदा करके जब किले के अन्दर लौट रहे थे, लेखक ने उनके लिए लिखा है - ''एक किशोर था जो किला-

द्वार तक गया था, एक पुरुष था जो किले के अंदर लौट रहा था।'' पृ. 471 । इस एक ही वाक्य में गोविन्दराय के चरित्र की इतनी विशेषताएँ उभरकर आती है जो बहुत-से वाक्य कहने पर भी इतनी सशक्त अभिव्यक्ति नहीं हो सकती थी। जैसे चट्टानी मनोबल, नौ वर्षीय दिमाग में चालीस वर्षीय व्यक्ति की प्रौढ़ता, भविष्य के पंथ के कर्णधार आदि-आदि अनेक विशेषताएँ।

'एक और अहल्या' में लेखक मनीष के चरित्र को इस प्रकार उद्घाटित करते हैं ''पर वह तो था अपने संस्कारों और आदर्शों का कायल। उसे इस गुपचुप और चोरी-छिपे की किसी बात में विश्वास नहीं था। वह भीतर-बाहर दोनों तरफ पूरी तरह खुला था। पूर्ण उन्मुक्त।'' (पृ. 12)

उपर्युक्त वाक्यों में मनीष का पूरा चरित्र हमारे सामने उभरकर आ जाता है। ऐसे तो अनेक उदाहरण हमें मिश्रजी के उपन्यासों में प्राप्त होते हैं।

4. सांकेतिकता

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में पूजा-पाठ, अनुष्ठान, मंदिर तथा कुछेक स्थलों के लम्बे विवरण मिलते हैं तो साथ ही कई स्थानों पर सांकेतिकता के भी दर्शन होते हैं। उपन्यास में रोचकता, कुतूहलता और जिज्ञासा जैसे भावों को बनाये रखने के लिए भी सांकेतिकता का गुण वांछनीय है। डॉ. मिश्र की 'पीतांबरा'', 'शांतिदूत', 'नदी नहीं मुड़ती' और 'एक और अहल्या' आदि उपन्यासों की शुरुआत ही कुतुहलपूर्ण ढंग से हुई है।

'पीतांबरा' उपन्यास में मीरा राणा सांगा को युद्ध में जाने से रोकती है। ''आप नहीं जाइये। न जाने मेरा मन क्यों घबरा रहा है। जिस डाली से मुझे थोड़ी भी छाया मिलने लगती है, वह कट जाती है।'' पृ. 421

उपर्युक्त कथन आनेवाली अनहोनी घटना को सूचित करता है।

'पहला सूरज' उपन्यास में जब शिवाजी के मन में अहम की भावना उत्पन्न होती है तब उसी समय समर्थ गुरु रामदास शिवाजी से मिलते हैं और उन्हें कुछ उपदेश प्रदान करते हैं। उनसे जो बातें करते हैं उनमें भी हमें सांकेतिकता दृष्टिगोचर होती है। पृ. 348 पर गुरु रामदास शिवाजी को कहते हैं - ''मेरा काम पूरा हुआ, मैं चला। मेरी इस अन्तिम सीख को सदा याद रखना। पता नहीं फिर भेंट हो या नहीं।'' तथा ''तुम्हारा काम भी प्रायः शेष हो गया। अब आगे भगदिच्छा।'' उपर्युक्त कथनों में गुरु रामदास छत्रपति शिवाजी को सावधान करते हुए सांकेतिक

ढंग से उनके पास जीवन-काल बहुत कम रह गया है, ऐसी आगाही भी कर जाते हैं।

'शान्तिदूत' उपन्यास में पृष्ठ 191 पर 'स्वतंत्रता की अधकटी रोटी' शब्द-प्रयोग सांकेतिक ढंग से हिन्दुस्तान-पाकिस्तान के रूप में राष्ट्र-विभाजन की स्थिति का द्योतक है। उसी पृष्ठ पर 'गाँधी हाशिए पर आ गए थे।' वाक्य-प्रयोग में 'हाशिए' शब्द गाँधीजी की राजनीति में महत्वहीन स्थिति की ओर संकेत करता है।

5. प्रतीकात्मकता

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में प्रतीकात्मकता का सहजतया निर्वाह हुआ है। उनके तो कई उपन्यासों के नाम भी प्रतीकात्मक हैं। 'पहला सूरज' उपन्यास छत्रपति शिवाजी के जीवन-कवन पर आद्धृत है। कई इतिहासकार हमारी स्वाधीनता की लड़ाई की पहली शुरुआत शिवाजी से मानते हैं। अतः इस दृष्टि से भी 'पहला सूरज' नामकरण शिवाजी के सन्दर्भ में उपयुक्त जान पड़ता है। 'सूरज के आने तक' उपन्यास का नामकरण भी प्रतीकात्मक है। उसमें अज्ञान, अशिक्षा और अंधविश्वास के साम्राज्य को समाप्त करने के लिए ज्ञान और शिक्षा रूपी सूरज के आने की बात है। 'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास का नामकरण भी प्रतीकात्मक है। जिस प्रकार सीता ने लक्ष्मण द्वारा खींची रेखा का उल्लंघन करके अपना अहित किया उसी प्रकार मनुष्य भी पर्यावरण रूपी रेखा को नष्ट करके अपने भावी के लिए संकट खड़ा करता है। 'नदी नहीं मुड़ती' उपन्यास में नदी सुषमा का प्रतीक है, इसीलिए उपन्यास के पृष्ठ 6-7 पर सुषमा अपने बारे में सोचती है - "चली है, काफी चली है सुषी, गत पाँच वर्षों में। जैसे एक युग ही निकल गया चलते-चलते। न जाने कितने गलत-सही मोड़ गुजर गए इस यात्रा के। न जाने कितने उद्देश्यहीन भटकाव। असंख्य छल। आत्मवंचना और बहुत कुछ। अब उल्टी यात्रा संभव है क्या। नदी नहीं मुड़ी है पीछे को? पर्वत की ओर?"

'एक और अहल्या' उपन्यास में अहल्या प्रतीक है पृथा का। जिस प्रकार अहल्या का उद्धार राम के द्वारा हुआ उसी प्रकार पृथा को विश्वास के साथ के नर्क समान जीवन से मुक्त कर मनीष उसे अपना लेता है।

लेखक ने 'शान्तिदूत' उपन्यास में देश के विभाजन के फलस्वरूप दुःखी गाँधीजी की मनःस्थिति को प्रसादजी की पंक्तियों द्वारा प्रतीकात्मक ढंग से अभिव्यक्ति प्रदान की है। यथा -

> "हिमगिरि के उत्तुंग शिखर पर बैठ शिला की शीतल छांह
> एक पुरुष भीगे नयनों से देख रहा था प्रलय प्रवाह। " पृ. 192

उपर्युक्त पंक्तियाँ गाँधी की तत्कालीन स्थिति के साथ पूर्णतया सटीक बैठती है। स्वतंत्रता का मनु, देश का बापू उस पौराणिक मनु की तरह ही देश में आए भीषण नरसंहार के प्रवाह पर अविरल आँसू बहा रहा था।

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में कतिपय प्रसंगों में प्रकृति का प्रतीक के रूप में भी चित्रांकन किया गया है। उदाहरण के लिए 'प्रथम पुरुष' उपन्यास का निम्नांकित अवतरण द्रष्टव्य है। अर्जुन ने प्रतिज्ञा की कि अभिमन्यु की मृत्यु के मूल कारण जयद्रथ की वे कल ही हत्या करेंगे और ऐसा नहीं कर पाये तो अग्नि-प्रवेश कर अपने प्राणों को विसर्जित कर देंगे। अतः श्रीकृष्ण चिन्तित होते हैं। उनकी अर्जुन को लेकर चिन्ता का प्रकृति के माध्यम से चित्रण किया गया है। यथा - ''कल से ही आरम्भ हुई चिन्ता का कोई अन्त था ही नहीं। मेघ-हीन आकाश की तरह निर्मल उनके मन के आकाश पर काले-काले जलद शावक किधर से घिरने लगे हैं? किस तूफान, किस झंझा का संकेत ते रहे हैं ये? उनके मन की शाखाओं पर पीत और शान्त तोतों की पंक्तियों के स्थान पर हिंसक बाजों ने कैसे स्थान बना लिए हैं?''पृ. 474-475

इसी उपन्यास में कंस की मृत्यु के पश्चात् अस्ति और प्राप्ति की वैधव्यग्रस्त स्थिति का प्रकृति के माध्यम से अंकन किया गया है। यथा - ''वैधव्य नारी-जीवन का महान अभिशाप है - सबसे भयावह दुःस्वप्न, एक ऐसी काल रात्रि जिसका अन्त ही नहीं था, जिसमें प्रातः अथवा प्रत्यूष नाम की कोई चीज ही नहीं होती। वैधव्यग्रस्त जीवन के क्षितिज पर प्रसन्नता और उल्लास की लालिमा को कभी भूलकर भी छिटकना नहीं था। जिस नारी का सौभाग्य-सूर्य सदा के लिए अस्ताचलगामी हो जाय उसके जीवन में किधर से एक प्रकाश-किरण को भी प्रवेश पाना था?'' पृ. 14

6. नवीन भाषाभिव्यंजना

प्रत्येक लेखक के भाषा-कौशल का पता उसकी भाषाभिव्यंजना शक्ति द्वारा होता है। उसके आधार पर हम उसकी भाषा का मूल्यांकन कर सकते हैं। डॉ. भगवतीशरण मिश्र में नवीन भाषाभिव्यंजना अधिक उभरकर आई है। डॉ. मिश्र के उपन्यासों मे नवीन शब्द-प्रयोग, नए विशेषण, नए रूपक, नए उपमान, कहीं-कहीं नए प्रतीकों का प्रयोग पाया जाता है। चतुर्थ और पंचम अध्याय में उस पर विस्तृत रूप से चर्चा हो चुकी है, अतः यहाँ केवल उन गद्य-खण्डों की बात होगी जिनकी चर्चा अगले अध्यायों के अंतर्गत नहीं हो सकी है। उनके उपन्यासों में ऐसे गद्य-खण्डों

की तो बहुलता पाई जाती है, अतः हमने केवल पाँच-छः उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। यथा - 'एक और अहल्या' उपन्यास में पृथा के पिताजी के चरित्र को उद्घाटित करने के साथ-साथ कार्यालय के कर्मचारियों की करतूतों का पर्दाफाश अपनी नवीन भाषाभिव्यंजना शक्ति का सहारा लेते हुए इस प्रकार किया है - 'नहीं पिताजी के पॉकेट में इतना कुछ कभी नहीं होता कि वे रसगुल्ला तो रसगुल्ला पान के बीड़े की तरफ भी नजर उठाकर देख सकते। पर कलक्टरी में विकसित हो एक विचित्र संस्कृति ने उन्हें कुछ लाभ पहुँचाना अवश्य शुरु किया था। जिस किसी बाबू को कोई 'आसामी' पकड़ाता तो वह उससे मुद्रा-मोचन करके ही दम नहीं लेता उसे वह हांक ले चलता किसी पशु की ही तरह उस बरगद के पेड़ की तरफ। बाकी सारे साथी, जैसे चींटी, गुड़ के ढेले अथवा चीनी के दानों को सूंघती रहती है वैसे ही इस सारी क्रिया-प्रक्रिया को ध्यान से सूंघते रहते और जैसे ही कोई बाबू किसी आसामी को लेकर चलता वे बिन-बुलाए मेहमान की तरह उनकी पंक्ति में जा लगते। विश्वमोहनजी भी इस अवसर को कब चूकनेवाले थे। अब इस आसामी के साथ-साथ उस बाबू की भी शामत आती। वह कैसे अपने साथियों को मना कर देता? उन्हें तो पता था कि पहले जेब गर्म कराने के बाद वह इस मुल्ले को पेट पूजा करवाने यहाँ ला पहुँचा है। ऐसे में अकेले वह रसगुल्ले और समोसे हजम कर जाए यह कहाँ संभव था? लिहाजा उसे अपने आसामी को कहना पड़ता कि वह उसके साथ-साथ, उसके साथियों को भी पेट-पूजा कराये। ऐसे में भले उस आसामी की जेब ठीक उसी तरह सिकुड़ जाए जैसे डाइबिटिज के मरीज के हाथ में आया रसगुल्ला निचुड़ जाता है पर उससे औरों को क्या? अगर उसके पॉकेट में घर लौटने का किराया भी नहीं बचे तब भी उस पर कोई दया करनेवाला नहीं था।......... बात तब ज्यादा बिगड़ जाती जब आसामी के पॉकेट में होती साठ रुपयें की राशि और दुकानदार का बिल बन आता सौ का? अब क्या हो? यह चालीस रुपये कौन भरे? पर चंदा लगाने के सिवा अब उपाय ही क्या था? ऐसे में सभी धीरे-धीरे खिसकना शुरु करते और सबसे पहले खिसकतें विश्वमोहनजी। पर जिस बाबू का आसामी होता वह बड़ी कुशलता से इस मौके को सम्भाल लेता। वह दुकानदार को राजी कर लेता कि बकाये की राशि के लिए आसामी के नाम खाता खोल दिया जाय। आखिर केस को तो एक-दो तारीख पर समाप्त होना नहीं था? अगर पेशकार की मेहरबानी रही तो वह केस उस आसामी के जीवनकाल में तो समाप्त होने से रहा। ऐसी स्थिति में अगली तारीख पर तो मुवक्किल को पुनः हाजिर होना ही था। बकाये की राशि उसी समय वसूल हो जाती । आसामी बेचारा भी क्या करता, हारे हुए जुआरी की तरह मुँह लटकाकर

वहाँ से चलता बनता। इसी सबके बीच कभी-कभार धोखे से विश्वमोहनजी के पॉकेट में भी दो-चार-दस रुपये आ गिरते। न सही उनकी संचिकाओं-रुपी तीसी में कोई तेल पर अपने साथियों की कुछ मदद तो वे कभी-कभी कर ही दे सकते थे। मुवक्किल को ठीक टेबल तक पहुँचा देना। उससे बाबू की मुँहमांगी फीस दिलवा देना, यह सब तो आसान था उनके लिए। और वह साथी उन्हें रिक्त हाथ लौटने दे यह कैसे हो सकता था? भले ही विश्वमोहनजी के अन्य साथी इसे घूस से भी अपवित्र दलाली के पैसों की संज्ञा देते पर विश्वमोहनजी को इससे क्या? वह तो उस श्रृगाल की तरह खुश रहते जो स्वयं शिकार नहीं कर सकता तो शेर के जूठे शिकार में ही मुँह मारकर अपना पेट भर लेता है। जहाँ सब एक ही तरह के हो, सभी नाजायज पैसों की अमरलता पर पल रहे हों वहाँ विश्वमोहनजी अगर किसी साथी की अनुकम्पा से दो-चार पैसे बटोर लेते थे तो उनका विवेक किधर से भी उन्हें कचोटता नहीं था। मुहल्ले के एकाध लोग भले कहते कि कलक्टरी का बाबू बनते-बनते वह रह गये दलाल बनकर पर इन सब बातों को विश्वमोहनजी इस कान से सुन उस कान से बाहर कर देते। कमल के पत्ते और हाथी की पीठ पर पानी की बूंदे कहाँ टिक पाती हैं?'' (पृ. 43-44)

उपर्युक्त गद्य-खंड में नए उपमान, नए विशेषण, नए शब्द-प्रयोग नयी कहावत तथा मुहावरे के प्रयोग, व्यंगीय तिक्तता लेखक की नवीन भाषाभिव्यंजना का परिचायक है।

'प्रथम पुरुष' उपन्यास में एक गोपी दूध-दधि में स्नात कन्हैया को लेकर यशोदा मैया केपास जाती है। पहले तो सारी गोपियाँ प्रसन्न होती हैपरन्तु बाद में उनको पश्चाताप होता है कि कहीं मैया कन्हैया को निर्ममता से पीट या ऊखल आदि से बाँध न दे। उनकी मनः स्थिति का वर्णन लेखक ने अनेक उपमानों के माध्यम से किया है। यथा - ''इस बात पर सभी गोपियों के चेहरे पतझड़ के पत्तों की तरह पीले पड़ गए। नहीं, यह नहीं करना था, सभी ने मन-ही-मन सोचा, कान्हा को मैया के सामने इस रूप में नहीं भेजना था। दूध से आपाद-मस्तक स्नात उसके गात को देखकर मैया का मन क्रोध से उसी तरह उफन आएगा जैसे आँच के तेज होने पर गोरस उफनने लगता है। पता नहीं वे उसकी क्या गति करेगी? सबको अब अपनी करनी पर पछतावा हो रहा था। एक बार उनके जी में आया कि सभी साथ ही जाकर बिगड़ी बात को बना लें। जाकर कुछ मिथ्या बहाने बना लें और कन्हैया को छुड़ा जाएँ। वे ऐसा सोच ही रही थी कि वह गोपी बाहर आ गई। उसके प्रसन्न मुख

को देखकर सब उसी तरह आश्वस्त हुईं जैसे अपने भूले धन को पाकर कोई कंजूस प्रसन्न होता है।''

'पीतांबरा' उपन्यास में तो उपमान, विशेषण, रूपक हर पृष्ठ पर मिल जाते हैं। यहाँ पर उसी उपन्यास के गद्य-खंड में रूपकों की झड़ी-सी लग गई है । यथा - ''अपराध का मार्जन तो अब क्या होता पर मीरा रूपी एक असमय मुरझाती मालती-लता की जड़ो में स्नेह की कुछ सलिल-बूंदे डालकर उसे जीवन-दान तो दिया जा सकता था। इसका राजनीतिक लाभ भी स्पष्ट था। एक बार मीरा फिर से श्रीकृष्ण मंदिर जाने लगे तो राणा के राजनीतिक जीवन के क्षितिज पर जो भयावह काले मेघ मंडराने लगे थे, मीरा की पुनः जाग्रत भक्ति के प्रवाह में उन्हें खंड-खंड होते विलम्ब नहीं लगता।'' पृ. 410

'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास के निम्नलिखित उदाहरणों में लेखक की अभिवयंजना शक्ति का चमत्कार देखने को मिलता है। यथा -

वर्तमान जिनके हाथों से अंजुलि में पड़ी रेत की तरह अंगुलियों के राह सड़ जाता है वे कहीं के नहीं रहते। समय की निर्दय शिला पर अपने सिर को पटक-पटक रक्त-रंजित करने की विवशता के अतिरिक्त उनके पास कुछ नहीं बचता । पृ.133

''पूर्णतया संपन्न, वनों के भारी ठेकेदार की एकमात्र बेटी पर लुटाने के लिए बहुत रुपए सुरक्षित कर रखे थे उसके स्वाभिमानी पिता ने। पर जब उनके स्वाभिमान को, राह में पड़े काँटे की तरह अपनी ऊँची एड़ी के चप्पल से निर्दयतापूर्वक कुचल दिया था गीतिका ने तो अब उनसे सहानुभूति के एक कण की भी कैसे आशा कर सकती थी वह?'' पृ. 145।

''नवीन के प्रसंग में विश्वंभर के प्रसंग का यह आ जाना उसे सुखद ही लगता है, ठीक वैसे ही जैसे कोई गर्मी की लू-लपटों का मारा किसी सघन वृक्ष की शीतल छाया पा गया हो।'' पृ. 156।

डॉ. मिश्र के गद्य शैली की मर्यादाएँ

डॉ. मिश्र एक विद्वान लेखक हैं किन्तु उनके उपन्यासों का भाषागत अध्ययन करने से हमें उनकी गद्य-शैली मर्यादाएँ भी दृष्टिगोचर होती हैं। उनके उपन्यासों में कहीं-कहीं पूजा-पाठ और अनुष्ठानों के उबाऊ विवरण प्राप्त होते हैं तो कहीं उनकी उपदेशक वृत्ति झलकती है। कहीं ऐसा लगता है कि वे पात्रों को कठपुतली की तरह नचा रहे हों। उपन्यासों में अनेक स्थान पर Printing mistake भी नजर आती

है। इसके अतिरिक्त असावधानी के कारण कुछ भाषागत दोष भी मिल जाते हैं। भाषागत दोषों में कहीं वाक्य-रचना कृत्रिम या शिथिल है तो कहीं कुछ शब्दों का गलत ढंग से प्रयोग किया गया है। कहीं-कहीं औचित्याक्रमण कर जाते हैं तो कहीं लिंग दोष भी नजर आते हैं। यहाँ पर एक बात ध्यातव्य रहे कि हमने लेखक के भाषादोष के अतिरिक्त कुछ तथ्यगत दोष एवं कालगत दोष का भी उल्लेख किया है। उपर्युक्त दोनों दोषों की चर्चा हमने पात्र और परिवेश के सन्दर्भ में की है।

1. भाषागत दोष

- दस बजते-बजते ही दो रिक्शों पर लद वे मनीष के कार्यालय की ओर प्रस्थित हुए थे।
- यह लम्बी कहानी है। स्थिर से बतलाएँगे।
- अभी-अभी सम्पन्न हुए चित्रकार की हीरोइनें थी ये।
- शीशे के सामने खड़ी वह अपने दीर्घ केशों को कंधी से नियंत्रित करने में व्यस्त थी।[4]
- सुखद भावनाओं को सृष्ट कर यह मानवीय कल्पना और उत्साह को पर लगा सकता है।[5]
- आज आपने हमारे मन को जिस प्रकार उच्च किया उस उपकार को हम आजीवन नहीं भूल सकते।[6]
- पास में एक दासी वर्तमान थी और वह पालने को अकेले छोड़कर जाएगी, इसकी उम्मीद ही व्यर्थ थी।
- अब सन्देह नहीं रहा कि कन्हैया आविष्ट है वर्ना कल तक बालकों की भाषा में तौल-तोल कर बातें करनेवाला बालक आज ऐसी बड़ी-बड़ी बातें करे।
- क्या वे अपने मोटे डण्डे से हम सभी को उसी तरह नहीं खदेड़ मारेंगे।
- कृतान्त (यम) से कम क्या होगा, उसका वह आक्रमण रुप जब वह तुम से आमने-सामने हुआ होगा?[7]
- पूर्वजन्म की बात कोई निश्चितपूर्वक नहीं जानता।[8]

उपर्युक्त वाक्यों में शब्द-प्रयोग या वाक्य-समूह में कृत्रिमता के दर्शन होते हैं।

(1) पृथा मनीष के कार्यालय की भव्यता को देखकर मुग्ध से अधिक आतंकित हो गई।[9]

(2) मत समझने की भूल करो कि अभी तुम्हारे सामने केवल संग्रामसिंह है केवल संग्रामसिंह।

उपर्युक्त वाक्यों की वाक्य-रचना शिथिल है।[10]

(1) आप लोग एक कोन में पड़े रहेंगे।[11]

उपर्युक्त वाक्य मनीष पृथा के पिता से कहता है जो उसके पिता के भी परम मित्र रह चुके हैं। यहाँ पर औचित्य भंग दोष है।

(1) नहीं अपितु यह मेरे मन की बात है जो तुम्हारी जिह्वा पर चढ़कर बोल रही है।

(2) इतिहास-पुराण साक्षी हैं कि जब-जब मनुष्य ने इस लक्ष्मण रेखा की मर्यादा का उल्लंघन करने का प्रयास किया है, अनर्थ घटा है।

(3) मुझे इन स्वयं-भू पर्यावरण प्रेमियों से घोर घृणा है।[12]

उपर्युक्त वाक्य-रचनाओं में क्रमशः अपितु, घटा और घृणा आदि शब्द-प्रयोग उचित नहीं लगते।

(1) उसने मेरी सेवा की परिचारिके। क्या सेवा की?[13]

(2) क्यों व्यर्थ के अत्यधिक तनावग्रस्त हो हनुमान के ईर्ष्यालु?[14]

उपर्युक्त वाक्य-रचनाओं में अस्वाभाविक प्रयोग हुआ है।

(1) पर सोच लो तब तुम्हारी खैर नहीं रहेगी?[15]

उपर्युक्त वाक्य में प्रहलाद अपने पिता को कहता है अतः 'तुम' के स्थान पर 'आप' सर्वनाम का प्रयोग होना चाहिए।

(1) समर्थ ने सब कुछ उगल दिया था।[16]

समर्थ ने सब कुछ उगल दिया था।

समर्थ गुरु रामदास के सन्दर्भ में 'उगलना' क्रिया औचित्य की दृष्टि से ठीक नहीं है।

(1) मेरे गोरे रंग को लेकर मुझे कृष्ण रंग ही प्रदान कर दो ताकि इस निगोड़ी चाँदनी से बचकर मैं अपने प्रिय के दर्शन को पहुँच सकुं।

(2) सुदामा के सदृश व्यक्ति को जब श्रीकृष्ण अकिंचन बना सकते हैं तो जो श्रद्धा-भक्तिपूर्वक उनको समर्पित होगा उसके पास दैन्य-दारिद्रय का नाम भी कहाँ रह पाएगा?

(3) पर ध्यान रखना मैं ब्रज की गोपियाँ नहीं...... और न हूँ मैं वह मूर्खा राधा..... जो तुम्हारी वियोगाग्नि में तिल-तिल जलती.....रहूँगी।

(4) क्या अपमान की इस घूंट को हम यों ही पी जाएँगे?

(5) तुम निसर्ग द्वारा इस किंचन की फटी झोली में टपकाई गई एक सुवासित सुमन हो।

(6) उन समयों जब तुमने इस पाषाण को नहीं छोड़ा तो अब क्या छोड़ोगी?

(7) उसे इस महल से बाहर करने के लिए कोई भी द्रव्य खर्च कर सकता हूँ।

(8) तुम भूलती हो ललिता कि मीरा केवल कृष्ण भक्ता ही नहीं, एक क्षत्राणी हूँ। मैं इतनी कायर नहीं। तुम अनावृत्त करो इस मंजूषे को।

(9) जिज्ञासा की शान्ति मैं अवश्य करुंगा पर मेरे पठन-पाठन पर प्रश्नचिह्न बतलाना श्रद्धा के बिना ज्ञान प्राप्ति असंभव है।

(10) चारों ओर घोर तिमिर का साम्राज्य व्याप्त था। ऐसे ही दुष्काल में वह पैदा हुआ था।

(11) तुम्हारा कोई ठीक नहीं।

(12) तुम तो घोर बीमार हो।

(13) तुम मेरे प्रति अतिरिक्त आकर्षण के कारण ऐसा कह रही हो।

(14) राजसी ठाट-बाट थी।[17]

प्रथम वाक्य में चाँदनी से बचने के लिए कृष्ण रंग प्रदान करने की बात उपयुक्त नहीं लगती। द्वितीय वाक्य में 'अंकिचन' शब्द का गलत ढंग से प्रयोग हुआ है। तृतीय वाक्य में 'मैं ब्रज की गोपियाँ नहीं'' में वाक्य दोष प्रतीत होता है। चौथे और पाँचवे वाक्य में लिंग-दोष है। छठे वाक्य में 'उन समयों' शब्द-प्रयोग दोषपूर्ण है। सातवे वाक्य में 'कोई' के स्थान पर 'कितना भी' होना चाहिए। आठवें वाक्य में 'एक क्षत्राणी हूँ' के स्थान पर 'एक क्षत्राणी ठीक है' रहता। नौवे वाक्य में वाक्य-रचना ठीक प्रतीत नहीं होती। दसवें वाक्य में 'दुष्काल' शब्द-प्रयोग उचित नहीं, प्रतीत होता। ग्यारहवे वाक्य में 'ठीक' शब्द-प्रयोग उचित नहीं प्रतीत होता। बारहवें वाक्य में 'घोर' शब्द-प्रयोग ठीक नहीं लगता। तेरहवे वाक्य में 'आकर्षण' के स्थान पर 'स्नेह' शब्द का प्रयोग उचित प्रतीत होता क्योंकि यह वाक्य राणा सांगाने मीरा को सम्बोधित करके कहा है। चौदहवे वाक्य में 'थी' के स्थान पर 'था' होना चाहिए।

(1) वे नहीं जा सकते ब्रज तो किसी और को तो भेज ही सकते हैं जो उनकी भावनाओं को ठीक-ठीक समझता ही नहीं हो उन्हें ठीक-ठीक ब्रजबालाओं तक संप्रेषित कर सकने में सक्षम हो।[18]

(2) कुछेक दिन पूर्व तो हम अयोध्या जाने का उपाय सोच रहे थे और आज यह आ धमके थे स्वयं देवाधिदेव महादेव अयोध्या जाने को प्रस्तुत ।

(3) जब इस धरती पर धर्मसंकट में पड़ता है।

(4) क्यों व्यर्थ में अत्यधिक तनावग्रस्त हों हनुमान के ईर्ष्यालु?[19]

प्रथम वाक्य में 'नहीं' शब्द नहीं होना चाहिए। द्वितीय वाक्य में 'धमके' क्रिया-प्रयोग महादेव शिव के लिए उचित नहीं प्रतीत होता। तीसरा वाक्य-प्रयोग दोषपूर्ण है। चौथी वाक्य-रचना में अस्वाभाविक भाषा प्रयोग हुआ है।

(2) तथ्यगत दोष।

भाषा चरित्र या पात्र के अनुरुप होनी चाहिए। अगर ऐसा नहीं होता तो वह लेखकीय दोष माना जाता है। 'पवनपुत्र' उपन्यास में पृ. 22 पर हनुमान की माता अंजना के लिए 'तपोपूता ललना' शब्द का प्रयोग किया है। यहाँ पर माता अंजना के लिए 'ललना' शब्द-प्रयोग उचित नहीं प्रतीत होता। उसी प्रकार 'पीतांबरा' उपन्यास में पृ. 110 पर लिखा गया है - 'पंडित रामदास में सारी तामसी प्रवृत्तियाँ जाग्रत थीं जैसे कि नृत्य-मग्न मयूर के सारे पंख पूरी तरह खड़े हो जाते हैं।' यहाँ पर रामदास की रसिकता को ध्यान में रखकर 'तामसी' के स्थान पर 'राजसी' शब्द-प्रयोग होना चाहिए। इसी उपन्यास में पृ. 334 पर ललिता ने मीरा को सम्बोधित करके हुए कहा है- 'भाड़ में गई तुम्हारी पुनीतता उसी दिन जिस दिन भोज से तुम्हारा ब्याह सम्पन्न हुआ।' ललिता मीरा की सखी है किन्तु उसके मुख से 'भाड़ में गई तुम्हारी पुनीतता' वाक्य-समूह अनुपयुक्त लगता है। इसी उपन्यास में पृ. 60 पर रामदास का लिए लिखा गया है - 'काम अर्थात् वासना के सम्बन्ध में तो पण्डित रामदास एकदम निष्कलुष थे' किन्तु पृ. 134 श्रृंगार-प्रेम के प्रदर्शन में ही विद्यापति का पूरा पद उद्धृत कर जाते हैं इतना ही नहीं राव दूदा स्वयं उनके श्रृंगार-प्रेम से अनभिज्ञ नहीं थे यह बात इसी पृष्ठ पर बतायी गई है।

डॉ. मिश्र उपमानों के मोह में कहीं-कहीं पर अनुचित उपमानों का प्रयोग भी कर जाते हैं। उनके 'शान्तिदूत' उपन्यास में पृ. 187 पर जिह्वा के लिए जो उपमान

प्रयुक्त किया वह उचित नहीं है। यथा - जैसे महाभारत की पौराणिक कथा में अर्जुन को केवल चिड़िया की आँख ही दिखाई पड़ रही थी उसी तरह जिन्ना को पाकिस्तान के सिवा और कुछ दृष्टिगोचर नहीं हो रहा था।

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में असावधानी के कारण कुछ तथ्यगत दोष भी दिखाई पड़ते हैं। उनके उपन्यास 'का के लागूं पांव' में पृ. 317 पर पं. शिवदत्त की मृत्यु की बात की गई है और 'गोबिन्द गाथा' उपन्यास में पृ. 209 पर उनको पाटलिपुत्र वासियों के साथ आनन्दपुर में आए हुए बताये गए हैं। इसी प्रकार 'गोबिन्द गाथा' उपन्यास में पृ. 249 पर दिलावर खां के प्राणों से हाथ धोने हुए बताया गया है तो पृ. 260 पर उनको जीवित बताया गया है।

'प्रथम पुरुष' उपन्यास में राजसूय यज्ञ के अश्व के लिए पृ. 193 पर मेघ-धवल अश्व विशेषण प्रयुक्त किया है तो पृ. 196 पर हिम उज्ञवल अश्व विशेषण का प्रयोग मिलता है।

डॉ. मिश्र के उपन्यासों में कहीं-कहीं पात्रों के नाम भी परिवर्तित हो जाते हैं। 'सूरज के आने तक' उपन्यास में पं. देवीशरण शास्त्री के लिए पृ. 82 और 86 प. देवीशरण त्रिपाठी नाम का प्रयोग मिलता है किन्तु पृ. 94 पर पं. शिवशरण त्रिपाठी नाम प्रयुक्त किया गया है। इसी प्रकार 'पीतांबरा' उपन्यास में रावदूदा के भाई के लिए पृ. 21 पर बीरसिंह नाम का प्रयोग हुआ है तो पृ. 23 पर बीरमसिंह नाम प्रयुक्त किया गया है। इसी उपन्यास में पृ. 25 पर राव दूदा के महल की ओर आते हुए सैनिक के कन्धे पर भाला होने की बात स्पष्ट की गई है किन्तु पृ. 27 पर वह जब राव दूदा के सामने आता है तो उसके कन्धे पर भाला नहीं था।

'शान्तिदूत' उपन्यास में पृ. 165 पर सरदार विठ्ठलभाई पटेल नाम का प्रयोग हुआ है किन्तु होना चाहिए सरदार वल्लभभाई पटेल। इसी उपन्यास में पृ. 156 पर दिया गया है कि 31 दिसम्बर, 1919 को लाहौर में कांग्रेसी-अधिवेशन हुआ किन्तु होना चाहिए 1929। 'लक्ष्मण-रेखा' उपन्यास में पृ. 132 पर गीतिका और नवीन का वार्तालाप चल रहा है। गीतिका कहती है - "नारी तुम केवल श्रद्धा हों, यह घिसी-पिटी बात सुनने को नारी कब तक बाध्य होती रहेगी? पंत की उस छायावादी अभिव्यक्ति को छायावाद के साथ ही दफन हो जाना चाहिए था।" उपर्युक्त कथन में तथ्यगत दोष साफ नजर आता है, क्योंकि 'नारी तुम केवल श्रद्धा हो' यह अभिव्यक्ति छायावादी कवि जयशंकर प्रसाद की है छायावादी कवि सुमित्रानन्दन पंत की नहीं।

कालागत दोष

उपन्यास में परिवेश के अनुरुप भाषा-शैली का प्रयोग अनिवार्य माना गया है। डॉ. मिश्र के 'पीतांबरा' उपन्यास में पृ. 424 पर इस तरह का वाक्य-प्रयोग है - राजपूती सेना ने बम बरसाना शुरु किया। यहाँ पर 'बम' शब्द के स्थान पर दारुगोला होता तो वह ठीक रहता क्योंकि उस समय बम की रचना की हुई नहीं थी । इसी उपन्यास में पृ. 287 पर डॉ. मिश्र ने बताया है कि मीरा आत्मचिंतन में लीन है और उसमें वह अपनी पूर्व परम्परा के भक्तों और आचार्यों का स्मरण कर रही हैं। इसमें तुकाराम का नाम भी होता है। मीराबाई का जन्म 1504 ई. में हुआ था और उनकी मृत्यु के पश्चात् 1608 ई. में तुकाराम का जन्म हुआ था तो यह कैसे संभव है कि उनके कई वर्षों बाद जन्म लेनेवाले तुकाराम का नाम उनकी जिह्वा पर आए?

इसी प्रकार डॉ. मिश्र के उपन्यास में 'का के लागूं पांव' के पृ. 427 पर और 'पीतांबरा' के पृ. 97 पर 'मिथक' शब्द का प्रयोग हुआ है। लेखक ने गुरु तेगबहादुर और रावदूदा के मुख से पौराणिक पात्र (क्रमशः अभिमन्यू और प्रहलाद) के सन्दर्भ में पौराणिक घटानओं का जिक्र करते हुए 'मिथक' शब्द का प्रयोग करवाया है जिसे हम कालगत दोष मानते हैं, क्योंकि उस समय यह शब्द का प्रचलन था ही नहीं। उनके समय के कई वर्षों बाद इस शब्द का आगमन हुआ, अत: यह कैसे सम्भव है कि उनके मुख पर यह शब्द आए। हाँ, अगर लेखक के द्वारा विचार प्रकट करते हुए यह शब्द आता तो उसे दोष नहीं माना जाता।

डॉ. मिश्र की गद्य-शैली की मर्यादाओं के अंतर्गत हमने भाषागत दोष, तथ्यगत दोष, काल-दोष आदि की चर्चा की किन्तु ये दोष इतने स्वल्प मात्रा में हैं कि उनसे डॉ. मिश्र की शैलीगत विशेषताओं की पर कोई खास प्रभाव नहीं पड़ता। उनकी भाषा गौरवपूर्ण और महिमामंडित है। उसमें सरलता, सुबोधता संक्षिप्ततास संकेतात्मकता, प्रतीकात्मकता, व्यंग्यात्मकता प्रभृति शैलीगत गुण मिलते हैं। उनकी शैली की विशेषता के कारण ही उनको हिन्दी के प्रसिद्ध लेखक प्रेमचन्द और जैनेन्द्र की पंक्ति में ला खड़ा करती है।

निष्कर्ष

अध्याय के समग्रावलोकन से हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक सहजतया पहुँच सकते है-

(1) डॉ. मिश्र के उपन्यासों हमें शैलीगत वैविध्य प्राप्त होता है।

(2) उनके उपन्यासों में प्रायः वर्णनात्मक शैली, व्यास शैली, समास शैली, आलंकारिक शैली, तर्कयुक्त गम्भीर शैली, प्रश्न शैली, चिन्तन प्रधान शैली, तरंग शैली, धारा-प्रवाह शैली, परिगणनात्मक शैली, प्रश्नोत्तर शैली, उद्धरण शैली, व्यंग्य शैली, सरल-सुबोध शैली जैसी विभिन्न शैलियाँ प्राप्त होती हैं।

(3) भाषागत वैविध्य की दृष्टि से विचार करे तो डॉ. मिश्र में संस्कृतनिष्ठ शैली, अरबी-फारसीवाली शैली, अंग्रेजी प्रधान शैली, आँचलिक (पंजाबी, बंगाली, भोजपुरी भाषा) शैली प्रभृति शैलियाँ मिलती है।

(4) डॉ. मिश्र के उपन्यासों की भाषा में सार्थक कथोपकथन, बहुश्रुतता, संक्षिप्तता, सांकेतिकता, प्रतीकात्मकता, नवीन भाषाभिव्यंजना जैसी कुछ शैलीगत विशेषताएँ भी उपलब्ध होती हैं।

(5) कोई लेखक चाहे कितना भी विद्वान और पण्डित क्यों न हो, होता वह मनुष्य ही है और कोई कितनी भी सतर्कता बरते कहीं-न-कहीं कोई चूक हो ही जाती है। डॉ. मिश्र में भी हमें भाषागत मर्यादाएँ और सीमाएँ मिलती है, कुछ देशकाल विषयक दूषण मिलते है परन्तु ऐसे दोष परिमाण में बहुत कम पाए जाते हैं।

******

सन्दर्भानुक्रम

1. भारतीय एवं पाश्चात्य काव्यशास्त्र : राजनाथ : पृ. 109
2. वही : पृ. 108
3. दृष्टव्य : समीक्षायण : प्रो. पारुकांत देसाई : पृ. 120
4. दृष्टव्य : एक और अहल्या : पृ.सं. क्रमशः 20, 21, 91, 212
5. दृष्टव्य : लक्ष्मण-रेखा : पृ. 170
6. दृष्टव्य : पहला सूरज : पृ. 101
7. दृष्टव्य : प्रथम पुरुष : पृ.सं. क्रमशः 63-64, 112, 120, 261
8. दृष्टव्य : पीतांबरा : पृ. 124
9. दृष्टव्य : एक और अहल्या : पृ. 20
10. दृष्टव्य : पीतांबरा : पृ. 422
11. दृष्टव्य : एक और अहल्या : पृ. 79
12. दृष्टव्य : लक्ष्मण-रेखा : पृ.सं. क्रमशः 139, 8, 206
13. दृष्टव्य : सूरज के आने तक : पृ. 69
14. दृष्टव्य : पवनपुत्र : पृ. 268
15. दृष्टव्य : प्रथम पुरुष : पृ. 95
16. दृष्टव्य : पहला सूरज : पृ. 140
17. दृष्टव्य : पीतांबरा : पृ.सं. क्रमशः 116, 194, 241, 264, 349, 428, 470, 559, 138, 205, 377, 180, 421
18. दृष्टव्य : पुरुषोत्तम : पृ. 20
19. दृष्टव्य : पवनपुत्र : पृ.सं. क्रमशः 30, 84, 140, 268

******